महाकवि क्षेमेन्द्र

चारु चर्या

॥ श्रीहरिः ॥

महाकवि-क्षेमेन्द्र-विरचिता

चारुचर्या

अथवा

सदाचारशिक्षा

मूल और भाषा टीका सहित

श्रीलाभसुभगः सत्यासक्तः स्वर्गापवर्गदः ।
जयतात् त्रिजगत्पूज्यः सदाचार इवाच्युतः ॥ १ ॥

लक्ष्मी का लाभ होनेसे भाग्यशाली, स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले तीनों जगत्के पूज्य, निजपत्नी सत्यभामा में वा अपने सत्यस्वरूपमें आसक्त, सदाचारकी समान सदा शुद्धस्वरूप श्री कृष्णकी जय हो ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुषस्त्यजेन्निद्रामतन्द्रितः ।
प्रातः प्रबुद्धं कमलमाश्रयेच्छ्रीर्गुणाश्रया ॥ २ ॥

जब दो घड़ी रात रहे उस ब्राह्ममुहूर्त्त में निद्रा को त्यागकर पुरुष सावधान होजाय, क्योंकि-गुणवान् का आश्रय लेनेवाली लक्ष्मी (शोभा वा धन) प्रातःकालके समय खिले हुए कमल का आश्रय लेती है ॥ * ॥ मनुष्य भोर ही उठकर नित्यकर्म से निबट कर अपने धंधे में लगजाय तो धन का लाभ होता है, शरीर में निरोगता और फुरती रहती है तथा अधिक समय मिलने से सायंकाल तक बहुतकुछ काम होजाता है, जिससे धन अधिक प्राप्त होता है ॥ २ ॥

पुण्यपूतशरीरः स्यात्सततं ज्ञाननिर्मलः ।
तत्याज वृत्रहा स्नानात्पापं वृत्रवधार्जितम् ३

मनुष्य सदा जलसे स्नान करके मलरहित पवित्र शरीरवाला होय, क्योंकि-वृत्रासुर को मारनेवाला इन्द्र जलमें स्नान करके ही वृत्रासुर को मारने से लगे हुए पाप से छूटगया था ॥ * ॥ स्नान करने से शरीर के बहुत से रोगों का नाश होता है, फुरती आती है, सुस्ती जाती है, स्नान से पहिले शरीर में भारसा मालूम होता है ॥ ३ ॥

न कुर्वीत क्रियां काश्चिदनभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
ईशार्चनरतं श्वेतं नाभून्नेतुं यमः क्षमः ॥ ४ ॥

मनुष्य अपने इष्टदेव की पूजा किये विना कोई काम न करे क्योंकि-शिवपूजा के प्रेमी श्वेत मुनि को यमराज अपने यमलोक को नहीं लेजा सकते थे ॥ * ॥ श्वेत मुनिकी कथा लिङ्गपुराण पूर्वार्ध ३० वें अध्याय में है ॥ ४ ॥

श्राद्धं श्रद्धान्वितं कुर्याच्छास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
भुवि पिण्डं ददौ विद्वान् भीष्मः पाणौ न शन्तनोः

मनुष्य शास्त्र में कही हुई रीति के अनुसार ही श्रद्धा के साथ श्राद्धकर्म करै, देखो विद्वान् भीष्म ने भूमि में पिंड दिया, परन्तु शन्तनु के हाथ में नहीं दिया ॥ * ॥ भीष्मजी श्राद्ध कर रहे थे उस समय उनके पिता शन्तनु ने तहाँ प्रत्यक्ष आ लंबा हाथ करके पिंड मांगा, परन्तु भीष्मजी ने अपने पिता के हाथ में पिंड न देकर भूमि पर ही दिया, क्योंकि-शास्त्र, हाथ में पिंड देने का निषेध करता है ॥ ५ ॥

नोत्तरस्यां प्रतीच्यां वा कुर्वीत शयने शिरः ।
शय्याविपर्ययाद्गर्भो दितेः शक्रेण पातितः ६

सोते समय पलँगका शिरहाना पश्चिम या उत्तरकी ओरको न करै, क्योंकि–शय्याका उलटफेर होनेसे इन्द्रने दितिके गर्भको गिरा दिया था ॥ * ॥ पुरानी कथा है, कि–कश्यप ऋषिकी स्त्री तपोव्रत धारण करके पवित्रताके साथ अपने पतिके आश्रममें रहती थी व्रतके नियम बताते समय उसके पतिने कह दिया था कि-- सोते समय उत्तर या पश्चिमको शिर न करना तो भी एक दिन सायं कालके समय दिति निषेध करीहुई दिशाकी ओरको शिर करके सोरही, उस समय उसकी बहिन अदितिका पुत्र इन्द्र कि-जो दैत्योंका वैरी था (और अदितिके जो पुत्र होनेवाला था वह दैत्य होनेसे अपना वैरी होगा यह जानकर) उसने मौसीके गर्भके, पेटमें ही टुकडे २ करडाले इसलिये हमको अपने बड़ोंके बताये हुए नियमोंको नहीं लांघना चाहिये ॥ ६ ॥

अर्थिभुक्तावशिष्टं यत्तदश्नीयान्महाशयः ।
श्वेतोऽर्थिरहितं भुक्त्वा निजमांसाशनोऽभवत् ।

उदारचित्त पुरुष याचकको भोजन कराकर जो बचरहै उसको खाय, श्वेत राजाने याचकको अन्न दिये विना भोजन करलिया था इसकारण उसको अपना मांस खाना पड़ा ॥ * ॥ श्वेतकी कथा वाल्मीकि रामायणके उत्तरकाण्डमें इसप्रकार लिखी है, कि-पहिले राजा श्वेतने अपनी जवानीमें राज्यपाटका सुख, नई २ युवतियोंके हाव भाव और पण्डितोंकी मधुर कविताका स्वाद लेनेमें कुछ कमी नहीं रक्खी थी । वह जैसा व्यवहारमें प्रवीण था तैसा ही ज्ञानी भी था परन्तु उसने किसी दिन भी आदरके साथ अतिथिको नहीं जिमाया था, जब वह बूढा होनेलगा तो उसने अपना शेष समय एकान्त और पवित्र स्थानमें रहकर ईश्वरके ध्यानमें विताने का निश्चय किया और अपने पुत्रको राजकाज सौंपकर हिमालयके ऊपर तपोवनमें चलागया । चार पुरुषार्थ पानेके लिये

बताये गये हैं, इसकारण ही उसकानाम पुरुषार्थ हैं, यह राजा उन मेंसे तीनको (धर्म, अर्थ, कामको) भोगकर चौथे मोक्षका साधन करनेके लिये वनमें गयाथा, तहाँ सदा रातदिन ध्यान धारणा आदि से ईश्वरकी आराधना करनेलगा, केवल फल मूलको ही खाकर रहता था, जब उसका तप ब्रह्माण्डमें अत्यन्त दमकनेलगा और देवता तथा दैत्य काँपउठे, तब इन्द्रने सोचा कि--क्या कोई मेरा इन्द्रासन लेनेका उद्योग कररहा है ? ऐसे सन्देहसे ब्रह्माजी सहित इन्द्रादि देवता उसके तप करनेके स्थान पर आये और देखा कि उसके बायें कन्धे पर श्वेतवर्णके यज्ञोपवीतकी तीन लड़ें तपस्या देवीसे मिलनेको आई हुई गंगाकी तीन धारोंकी समान दीख रही हैं और मुनि एकान्त ध्यानमें परमात्माके परम स्वरूपका ध्यान कररहे हैं । थोडी देरमें मुनि ने अपने नेत्र खोलकर देखातो ब्रह्माजी और इन्द्रादि देवता खड़े हैं, उनके चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करके राजाने कहा, कि–महाराज ! मेरा जन्म धन्य है । उससे ब्रह्माजी ने कहा, कि--बेटा वर माँग, इस तेरे चिरकाल के तपका कोई साधारण फल नहीं है । यह सुन कर राजाने कहा, कि—ब्रह्माजी ! मुझे तो सदेह मुक्तिकी इच्छा है, मैं और कुछ नहीं चाहता, यह सुनकर इन्द्रादि देवता बोले कि-और जो कुछ भी चाहें वह हम तुझे देने को तयार हैं, परन्तु सदेह मुक्ति मिलना कठिन है, फिर ब्रह्माजी ने श्वेत की अति कठोर तपस्या की ओर दृष्टि देकर कहा, कि–बेटा ! तू घवड़ा नहीं, इस शरीर को इस आश्रम में ही छोड़कर तू स्वर्ग में चल। श्वेतमुनि ब्रह्मा की शान्तिदायक बातको मानकर तुरन्त ही अपने शरीर को त्यागकर ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक में गया, तहाँ नित्य नए भोग भोगने लगा, परन्तु अपने पहिले जन्म में किसी दिन भी अतिथि को भोजन नहीं कराया था, इस कारण जब भोजन का समय हुआ तब सब देवलोकवासी देवताओं के लिये

सुंदर २ भोजन आए, परन्तु श्वेत के लिये भोजन नहीं आया, यह देखकर उसने अपने मनमें कहा, कि–यह क्या बात है ? मैंने इतनी तपस्या करी तो क्या मुझे अन्न तक भी नहीं मिलसकता ? कुछ देर ऐसी चिन्ता करके ब्रह्माजी के पास जाकर कहने लगा, कि-महाराज ! इन देवताओं को तो सबों को भोजन मिलगया, मुझे क्यों नहीं मिला ? । ब्रह्माने कहा, कि-तू परमज्ञानी, योगी और तपस्वी था, परन्तु तूने एक दिन भी किसी अतिथि को भोजन नहीं कराया, अतः तुझे भोजन नहीं मिलेगा, जब तू अगस्त्य को दान देकर उनका सत्कार करेगा तो तुझे यहाँ भोजन मिलेगा, यह सुनकर श्वेतने कहा कि–महाराज ! तो मैं यहाँ क्या खाकर रहूंगा ? इसपर देवताओंने कहा कि तेरा शरीर हिमालयके पास वनमें पड़ा है. उसमेंसे तू रोज पेट भर कर मांस खा आया कर तेरे खानेके पीछे वह मृतशरीर फिर जैसा का तैसा होजाया करेगा, देवताओंकी बात सुनकर राजा प्रतिदिन मध्यान्हके समय विमानमें बैठकर अपने शवके पास जाता और उस मेंसे मांस खा आता था, ऐसे बहुत वर्ष बीतजाने पर ब्रह्माजीसे बूझा, कि--इसप्रकार अपना मांस मुझे कबतक खाना पड़ेगा ? ब्रह्माजीने कहा, कि-अगस्त्यको दान देनेके बाद तुझे यहाँ भोजन मिलेगा तदनन्तर एक समय अगस्त्य मुनि तीर्थयात्रा करते जहाँ श्वेतका शव पड़ाथा उस वनमें जा निकले तहाँ वृक्ष फलोंके बोझेसे लच रहे थे, लताओंके नीचे सुगंधित फूल बिखरेहुए थे चारों ओर से मन्द २ सुगन्धित पवन आरहा था, परन्तु तहाँ प्राणी नामा कोई नहीं दीखता था, इसकारण वह वन भयानकसा प्रतीत होता था, अगस्त्य मुनिने मनमें सोचा कि-यह वन देवताओंके रमणीय मन्दिर की समान है, तो भी यहाँ न जाने पशु पक्षी आदि कोई भी क्यों नहीं है, तब तो यहाँ अवश्य ही कोई भूत प्रेत रहता होगा. ऐसा विचार करके आगे को बढ़े तो उनको श्वेतका मृत शरीर दीखा,

उसके पास जाकर देखा तो वह शव ताजी मालूम हुआ, अगस्त्यने विचार किया कि-इस शवके लिये यहाँ कोई आता न हो, इसलिये यहाँ ठहर कर पता लगाऊँ, ऐसा विचार कर पास ही एक शिवजी के मंदिर में जाकर बैठगए। जब मध्यान्ह का समय हुआ तब श्वेत मुनि अप्सराओंके साथ विमानमें बैठकर तहाँ आया, उसके विमानकी झन्कारको सुनकर मुनि उसके पास गए तो श्वेतको अपना मांस खाते हुए देखा तब उससे बूझा, कि--अरे ऐसा काम क्यों करता है ? उसने कहा, तुम कौन हो ! मुनिने कहा, कि मैं अगस्त्य हूं, तब तो श्वेतने तुरन्त ही प्रणाम करके कहा, कि-महाराज ! आज मेरे शापका अन्त आगया, मैंने आजतक जो तप तथा अन्य सत्कर्म किया था उसका फल मुझे आज ही मिला है, इसके अनन्तर नालमणिकी माला कण्ठमें से उतार कर देने लगा तब अगस्त्य ने कहा, कि--नहीं, मैं किसा का दान नहीं लेता हूं। श्वेतने कहा, कि-महाराज ! इस मालाको लिये विना तो सरेगा नहीं, जबतक आप इस माला को नहीं लेंगे तब तक मुझे स्वर्गमें भोजन नहीं मिलेगा, ब्रह्मादिकोंने भी कहा है, कि--वह तेरा दान लेंगे, तब तुझे स्वर्ग में भोजन मिलेगा, यह सुनकर अगस्त्य ने माला लेली, तब तो उसी समय श्वेत का शव जलकर भस्म होगया और श्वेत को स्वगमें भोजन मिलने लगा। इससे यह शिक्षा मिलती है, कि--कोई भी अतिथि आवे तो उसको यथा शक्ति अन्न देना चाहिये, क्योंकि-प्राणोंका आधार होने के कारण अन्नदान सबसे श्रेष्ठहै ७

जपहोमार्चनं कुर्यात्सुधौतचरणः शुचिः ।
पादशौचविहीनं हि प्रविवेश नलं कलिः ।८।

मनुष्य हाथ पैर धो भले प्रकार पवित्र होकर जप, होम, पूजन करै, क्यों कि--हाथ पैर न धोनेवाले राजा नलके शरीरमें क़लियुग घुसगया था ॥ * ॥ कलि (क्लेशबुद्धि) १२ वर्ष तक नल के राज्य में रहा परन्तु उसको नलके शरीर में प्रवेश करनेका अव-

सर नहीं मिला, एकदिन नल लघुशंका करके हाथ पैर धोए बिना ही संध्या करनेको बैठगया, यह अवसर पाते ही कलि उसके शरीरमें घुस बैठा, जिसके कारणसे राजपाट सब खोकर नलको बन २ में भटकना पड़ा ॥ ८ ॥

न सञ्चरणशीलः स्यान्निशि निःशङ्कमानसः
माण्डव्यः शूललीनोऽभूदचोरश्चोरशङ्कया॥९॥

रातमें निःशङ्क मनसे घूमनेका स्वभाव न रक्खो, देखो, मांडव्य ऋषि चोर नहीं थे तो भी चोरके सन्देहसे शूली पर चढ़ाये गए ॥*॥ माण्डव्य ऋषि अपने आश्रमसे बाहर मैदान में सदा ऊँची बाहु किये हुए तप किया करते थे, एक दिन चोर राजमहल में कूमल दे धन लिये हुए इनके आश्रममें आये और चोरी का माल रखकर आराम करनेलगे, इतने में ही राजाके सिपाही आगए उनको देख कर चोर तो भागगए, परन्तु चोरीका माल आश्रममें मिला तब तो सिपाही मुनिको ही चोर समझ बन मेंसे पकड़ कर ले गए और उनको सूली दीगई, यदि रातमें बाहर न गए होते तो चोर आश्रममें चोरीका माल काहेको डालजाते ?

न कुर्यात्परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत्।
हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः ॥

मनुष्यको परस्त्री की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिये और स्त्रियों के ऊपर सर्वथा विश्वास भी न करै, देखो परस्त्री सीताके ऊपर आसक्त होनेसे रावण मारागया और स्त्रीके ऊपर भरोसा रखने वाले बिदूरथको स्त्रीने ही मार डाला ॥ * ॥ रावणकी कथा को सब ही जानते हैं। राजा बिदूरथ बड़ा स्त्रीलम्पट था, अपनी स्त्री में बड़ा ही मग्न रहता था, उसकी लम्पट रानीने अपने शिरके बालोंमें छुरी छिपाकर काम विलास करते २ जब राजा थककर सोगया तो उसको छुरीसे मारडाला ॥ १० ॥

न मद्यव्यसनी क्षीवः कुर्य्याद्वेतालचेष्टितम् ।
वृष्ण्यो हि ययुः क्षीवास्तृणप्रहरणाः क्षयम् ॥

मदिरा पीनेका व्यसनी नीच पुरुष प्रेतबाधावाले की समान आचरण (अति घोर काम) करता है, अतः मनुष्यको मदिरा नहीं पीनी चाहिये, देखो मद्य पीकर उन्मत्त हुए यादव परस्पर पतेल का प्रहार करके ही कटमरे ॥ * ॥ द्वारकामें रहनेवाले यादव प्रभास तीर्थ पर जा मदिरा पीकर ऐसे उन्मत्त हुए कि–परस्पर पतेलका प्रहार करके नाशको प्राप्त होगए यह कथा महाभारत मुसलपर्वमें विस्तारके साथ लिखी है ॥ ११ ॥

ईर्ष्या कलहमूलं स्यात्क्षमा मूलं हि सम्पदाम् ।
ईर्ष्यादोषाद्द्विप्रशापमवाप जनमेजयः ॥ १२ ॥

ईर्ष्या (डाह) कलह का मूल है और क्षमा सम्पत्तिका मूल है, देखो ईर्ष्याके कारणसे ही जनमेजयने ब्राह्मणका शाप पाया था ॥ * ॥ गर्ग मुनि का पुत्र हरएकसे कठोर बचन कहा करता था, एक दिन उसने जनमेजय को बहुत कटु बचन कहे, इससे जनमेजय ने गर्गके पुत्रको ईर्ष्याभाव से मारडाला, अतः उसको ब्रह्महत्या लगी, प्रजाने उसका तिरस्कार किया और ब्राह्मणों ने उसको शाप दिया, कि–तू सौ वर्ष तक नरकमें कष्ट भोग १२

न त्यजेद्धर्ममर्यादामपि कष्टदशां श्रितः ।
हरिश्चन्द्रो हि धर्मार्थी सेहे चाण्डालदासताम्

अति दुःख की दशामें पड़कर भी धर्मकी मर्यादाको न छोड़े देखो धर्म रखनेकी इच्छासे राजा हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी दास-पनेका नौकरी तक का ॥ १३ ॥

न सत्यव्रतभङ्गेन कार्यं धीमान् प्रसाधयेत् ।

ददर्श नरकक्लेशं सत्यनाशाद्युधिष्ठिरः । १४ ॥

बुद्धिमान् पुरुष मिथ्याभाषण करके अपना काम न साधै, देखो सत्यका नाश करनेसे राजा युधिष्ठिर को नरक का दुःख भोगना पड़ा था ॥ * ॥ महाभारत के युद्ध में भीमसेन ने अश्वत्थामा नामक हाथी को मार कर द्रोणाचार्य से कहा, कि अश्वत्थामा मरगया, अब क्यों लड़रहे हो, यह सुन कर द्रोणाचार्य सोचने लगे कि—मेरा पुत्र तो चिरंजीव है, वह कैसे मरगया, इस सन्देह को दूर करने के लिये उन्होंने युधिष्ठिरसे बूझा, क्योंकि—वह समझतेथे कि—युधिष्ठिर सत्यवादी हैं, वह झूठ नहीं बोलेंगे, परन्तु युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, कि—'अश्वत्थामा मृतो नरो वा कुंजरो वा' अर्थात् अश्वत्थामा तो मरा है, परन्तु यह नहीं कह सकता कि—हाथी मरा है या मनुष्य, उनका ऐसा कहना अनिश्चित था, इस कारण मिथ्या बोलने से उनको नरक का क्लेश भोगना पड़ा था, इस लिये प्राण तक जाते रहें तो भी झूठ न बोलै

कुर्वीत सङ्गतिं सद्भिर्नासद्भिर्गुणवर्जितैः
प्राप राघवसङ्गत्या प्राज्यं राज्यं विभीषणः १५

सत्पुरुषोंकी सङ्गति करनी चाहिये, गुणहीन असज्जनोंका सङ्ग कभी न करे देखो श्रीरामचन्द्रजीके सङ्गसे विभीषणने बड़ा भारी राज्य पाया था ॥ १५ ॥

मातरं पितरं भक्त्या तोषयेन्न प्रकोपयेत् ।
मातृशापेन नागानां सर्पसत्रेऽभवत्क्षयः॥ १६॥

जराग्रहणतुष्टेन निजयौवनदः सुतः ।
कृतः कनीयान् प्रणतश्चक्रवर्त्ती ययातिना १७

माता और पिताको सेवा करके प्रसन्न करे देखो माताके शाप

के कारणसे सर्पयज्ञमें सर्पोंका नाश होगया और अपने बुढ़ापेको लेलेनेके कारणसे प्रसन्नहुए राजा ययातिने अपनी युवावस्था देकर प्रणाम करनेवाले अपने छोटे पुत्रको चक्रवर्त्ती बनादिया ॥ * ॥ कद्रू और विनता दो पहिने थीं, एक समय उनमें परस्पर विवाद होगया। कद्रूने कहा इन्द्रका घोड़ा सफेद है उसकी पूंछ काली है और विनताने कहा उसकी पूंछ भी सफेद है, फिर दोनों जनी इसका निश्चय करनेको घोड़ेके पासको चलदीं कद्रूने मार्गमें अपने पुत्र सर्पोंसे कहा कि-तुम पतले होकर घोड़ेकी पूंछमें चिपटजाओ, जिससे काली दीखनेलगे परन्तु सर्पोंने अपनी माकी यह बात नहीं मानी, इसकारण कद्रूने शाप दिया कि-तुम जनमेजयके यज्ञमें भस्म होजाओगे, यह कथा महाभारत आदिपर्वके २० वें अध्याय में है। ययातिकी कथा महाभारत आदिपर्वमें इसप्रकार लिखी है कि-ययातिने अपने पुत्रोंसे जवानी मांगी परन्तु किसीने नहीं दी अन्तमें छोटे पुत्रने देना स्वीकार किया, इस पर प्रसन्न हुए ययातिने अपने बड़े पुत्रोंको राज्य न देकर छोटेको ही सर्वस्वका स्वामी बनादिया ॥ १६ ॥ १७ ॥

दानं सत्त्वमितं दद्यान्न पश्चात्तापदूषितम् ।
बलिनात्मार्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये १८

मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार दान देय, जो दान पछताये के कारणसे दूषित कहलावे ऐसा दान न देय, देखो-राजा बलि को अपने किये हुए दानको पूरा पाड़नेके लिये अपना शरीर बन्धनमें डालना पड़ा था ॥ * ॥ बलिने यज्ञ करते समय नियम किया था, कि-ब्राह्मण आकर जो कुछ माँगेगा वही दूँगा, उस समय इन्द्रकी प्रेरणासे भगवान् वामनरूप धरकर गए और उससे तीन पग भूमि माँगी शुक्राचार्य योगबलसे इस भेदको जानते थे अतः उन्होंने दानदेनेसे रोका परन्तु बलिने गुरुकी बात

न मानकर वामनजीको तीन पग भूमिका सङ्कल्प करा तत्काल वामनजी त्रिलोकीमें व्यापगए उन्होंने दो ही पगसे सात पाताल और सात स्वर्ग नाप डाले और तीसरा पग राजासे माँगा तब राजाने अपना मस्तक दिया भगवान्‌ने मस्तक पर पैर रखकर उस को पातालमें को दवादिया, इसप्रकार शक्तिसे बाहर दान करने के कारण बलिको पातालमें जानापड़ा ॥ १८ ॥

त्यागे सत्वनिधिः कुर्यान्न प्रत्युपकृतिस्पृहाम्
कर्णः कुण्डलदानेऽभूत्कलुषः शक्तियाञ्चया १९

दान करते समय सत्त्वगुणका भण्डार बन कर दान देय और उससे किसी प्रकारके उपकारकी आशा न करे, देखो-इन्द्र कर्णके पास कुंडल माँगनेको गया था, तब कर्णने बदलेमें उससे शक्ति माँगकर अपना हलकापन दिखाया ॥ * ॥ इन्द्रने ब्राह्मण के रूपमें कर्णके पास आकर कहा, कि-हे कर्ण ! तू अपनेको बड़ा दाता मानता है तो तू अपने दोनों कुण्डल और शरीर परका कवच मुझे दे, कर्णने कहा, कि-चाहे तू मेरा राज्यतक लेले परन्तु कुंडल कवच मत माँग, परन्तु ब्राह्मणने हठ नहीं छोड़ी तब कर्णने 'कोई देवता है' ऐसी शंका करके कहा, कि-मेरी समझ में तुम कोई देवता हो इसलिये मुझे अपनी शक्तिदो तो मैं तुम्हें कुंडल और कवच दूँ, इस पर इन्द्रने पहिले तो निषेध किया, परन्तु अन्तमें कहा एक योधाके मारने योग्य शक्तिदेता हूं ॥ १९ ॥

ब्राह्मणान्नावमन्येत ब्रह्मशापो हि दुःसहः ।
तक्षकाग्नौ ब्रह्मशापात्परीक्षिदगमत्क्षयम् २०

विद्वान् निजकर्मपरायण ब्राह्मणों का अपमान न करै, क्योंकि-ब्राह्मणोंका शाप बड़ा असह्य होता है, देखो ब्राह्मणके शापके कारणसे ही राजा परीक्षित, तक्षक सर्पके विषरूप अग्निमें भस्म हो गया ॥ * ॥ भागवतके १ स्कन्धमें कथा है, राजा परीक्षित शिकार

खेलता २ शमीक ऋषिके आश्रम में गया और उनसे पीनेको जल मांगा, मुनि ध्यानमें बैठे थे, उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया, इस पर राजाको बुरा मालूम हुआ और उनके गलेमें एक मरा हुआ सर्प डालकर अपने घर चला आया, मुनिके पुत्रने यह समाचार पाकर राजाको शाप दिया कि—आजसे सातवें दिन तुझे तक्षक साँप काटेगा, इसकारण राजा सातवें दिन साँपके डसने से मरगया ॥

दम्भारम्भोद्धतं धर्मं नाचरेदन्तनिष्फलम् ।
ब्राह्मण्यदम्भलब्धास्त्रविद्या कर्णस्य निष्फला ॥

जिस धर्मके आरम्भमें दंभ हो ऐसे ढोंगी धर्मको न करै, क्योंकि-अन्तमें वह निष्फल होता है, देखो कर्णने ब्राह्मणका वेष धर कर विद्या पढ़ी थी, इस कारण उसकी विद्या निष्फल हुई ॥*॥ कर्ण अस्त्रविद्या सीखना चाहता था, परन्तु परशुरामजी केवल ब्राह्मणों को ही सिखाते थे, इसकारण वह ब्राह्मण बनकर उनके यहाँ पढ़ने लगा। एकदिन परशुराम कर्ण की गोदमें शिर धरे, सोरहे थे, इतने में ही इन्द्रने भौंरा बनकर कर्णकी जाँघमें काट खाया, परन्तु गुरुके जागनेके डरसे कर्ण हिला तक नहीं, तदनन्तर उस घावमेंका गरम रुधिर लगने से परशुराम की निद्रा उचट गई और तुरन्त कर्णसे बूझा कि—यह रुधिर कहाँ से आया ? कर्णने भौंरेका डंक दिखाया, इस पर उन्होंने कहा, कि-ऐसा कठोर डंक लगने पर भी तूने मुझे नहीं जगाया इससे प्रतीत होता है तू ब्राह्मण नहीं है, ब्राह्मण ऐसा दुःसह दुःख नहीं सह सकता, कर्णने कहा कि—महाराज ? मैं न ब्राह्मण हूं, न क्षत्रिय हूं, किन्तु सूतपुत्र हूँ, इस पर परशुरामने कहा, कि-तूने कपट करके मुझसे विद्या सीखी है, जा तेरा ब्रह्मास्त्र निष्फल होगा ॥ १२ ॥

नामेव्यमेवया दध्याद्दैवाधीने धने धियम् ।

भीष्मद्रोणादयो याताः क्षयं दुर्योधनाश्रयात् ॥

धन प्रारब्ध के अनुसार मिला करता है, इसकारण सेवाके अयोग्य नीच की सेवा करके धन पाने की इच्छा न करे, देखो धनके लिये नीच दुर्योधन का आश्रय लेने से भीष्म द्रोण आदि का नाश होगया ॥ * ॥ दुर्योधन भारतवर्ष का चक्रवर्ती राजा होने पर भी बड़े पापी स्वभाव का था, इस बात को सब जानते थे तो भी भीष्म, द्रोण आदि धन के लोभ से उसके आश्रय में रहे उसका फल यह निकला, कि-जब दुर्योधन के पाप का घड़ा भर कर अन्तमें फटा तो महाभारत के युद्ध में स्वयं नष्ट हुआ और साथ में उसके साथी भी मारेगए ॥ २२ ॥

परप्राणपरित्राणपरः कारुण्यवान् भवेत् ।
मांसं कपोतरक्षार्थे स्वं श्येनाय ददौ शिविः ॥

दूसरे के प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये मनुष्यको दयालु होना चाहिये, देखो-राजा शिविने कबूतर की रक्षाके लिये अपने प्राण तक देदिये थे ॥ * ॥ महाभारतके वनपर्वमें कथा है, कि-राजा शिवि बड़ा दयालु था, एकदिन उसका दयालुताकी परीक्षा करने के लिये इन्द्रने शिकरेका और अग्निने कबूतर का रूप धारण किया। राजा शिविकी यज्ञभूमिमें वे दोनों लड़ते २ आये, कबूतर शिकरेके भयसे राजाकी गोदमें जाकर बैठगया, शिकरेने उसके ऊपर जाकर पंजा जमाया, राजाने उसको हटाकर कबूतरको अपने हाथसे ढकलिया, इस पर शिकरेने कहा कि-हे धर्मज्ञ राजन् ! यह मेरा भोजन है और मैं आज लंघन से हूं, इसकारण इसके न मिलने से मैं मर जाऊँगा और मेरे मरनेसे मेरा परिवार भी भूखा मरजायगा, सो एक जीवके लिये बहुतसे जीवों की हत्या न कर। राजाने कहा, कि-तू और जो कुछ माँगेगा सो देदूंगा, परन्तु इस शरणमें आये हुए को नहीं दूंगा। शिकरेने कहा तो अपने

शरीरका मांस दो, जिससे मेरी भूख मिटे, राजाने तुरत तराजू मँगाई और उस कबूतरकी बराबर अपना मांस तोलनेलगा, राजा बराबर अपना मांस काट २ कर चढ़ाता रहा, बहुतसा मांस काटनेपर भी कबूतरकी बराबर न हो पाया, तब तो राजा अपने आप तराजू में चढ़बैठा। राजाकी ऐसी दयालुता देखकर इन्द्र और अग्नि अपने स्वरूपसे प्रकट होगए और बोले कि-हे राजन्! हम परीक्षा करने आये थे वास्तव में तू सच्चा दानी और दयालु है, संसार में तेरा बड़ा यश होगा ॥ * ॥ ऐसा आशीर्वाद देकर चलेगए २३

अद्वेषपेशलं कुर्यान्मनः कुसुमकोमलम्।
बभूव द्वेषदोषेण देवदानवसंक्षयः ॥ २४ ॥

मनको द्वेषरहित, स्वच्छ और फूलकी समान कोमल रक्खै, देखो द्वेषरूप दोषके कारणसे युद्ध हो होकर देवता और दानवोंका नाश हुआ ॥ * ॥ जहाँतक होसके कुटुंबियोंसे जातिवालोंसे और देश वासियों से द्वेषभाव न रखकर परस्पर मेल रक्खे, देखो भारतवर्ष का आपसमें द्वेष था इसकारण ही मेल नहीं रहा था राज्य यवनों ने आकर छीनलिया और परस्पर एकमति होनेके कारण अंग्रेजों ने उसको पालिया ॥ २४ ॥

अविस्मृतोपकारः स्यान्न कुर्वीत कृतघ्नताम्।
हत्वोपकारिणं विप्रो नाडीजङ्घमधश्च्युतः २५

दूसरेके किये हुए उपकारको भूलकर कृतघ्नता नहीं करनी चाहिये, देखो-अपने ऊपर उपकार करनेवाले नाडीजङ्घ को मार डालनेसे गौतम ब्राह्मण पुण्यलोकसे गिर कर नरकमें पड़ा ॥*॥ महाभारत शान्तिपर्वके आपद्धर्म में कथा है, कि-एक गौतम नाम का ब्राह्मण वडा दरिद्र था, वह घूमता २ उत्तर के म्लेच्छ देशमें पहुंचकर एक म्लेच्छ के यहां ठहरा म्लेच्छने उसको अन्न,

घर और एक स्त्री दी, वह उस स्त्रीके साथ घर बना कर रहने लगा खानेके लिये रोज जाल लगाकर पत्ती पकड़ लाता था कुछ समयमें तहां गौतमका मित्र एक और ब्राह्मण भी आपहुंचा, वह ग्रामभरमें भित्ताको घूमा परन्तु सब म्लेच्छोंके ही घर पाये अन्तमें एक गौतम ब्राह्मणका घर मिला गौतम भी उस समय पत्तियोंको मारकर रुधिरमें सनाहुआ आरहा था, यह देखकर ब्राह्मणने कहा कि—अरे भाई! तू यहां कहां? और यह चांडालका काम क्यों करता हैं? गौतमने नीचेको मुख करके कहा, कि—ठहरो रसोई बनाओ। ब्राह्मणने गौतमके म्लेच्छाचारको देखकर कहा कि--भूख नहीं है केवल एक रात ठहरूँगा तदनन्तर वह रातभर सोकर सवेरे ही चलागया कुछ दिनोंमें गौतम कुछ साथियोंके साथ नौकामें बैठकर परदेशको गया एक टापू आने पर सब लोग नौकामेंसे उतरकर एक वनमेंको चलदिये इतने ही में एक हाथीके आनेसे सब जिधर तिधरको भाग निकाले गौतम भागता २ एक नाडीजंघ बकके आश्रममें पहुंचकर एकान्तमें सोरहा। सांझ होनेपर नाड़ीजंघने स्वर्गसे आकर इसे जगाया और कहा कि--भाई! तू कहां रहता है, कौन है और तेरा नाम क्या है? गौतमने कहा--पहिले मध्यदेशमें रहता था अब म्लेच्छ देशमें रहता हूं दरिद्रताके कारण कुछ लोगोंके साथ धन कमानेको निकला था मार्गमें एक हाथीके आजानेसे सब बिछुड़गए मैं भागता २ यहां आपहुंचा, मेरा नाम गौतम है। इस पर नाड़ीजंघने कहा, कि—कुछ चिंता नहीं है यह घर तुह्मारा ही है, फिर भोजन कराकर अपने पंखों से उसकी हवा करने लगा और कहा कि—पास ही एक मेरुब्रज नगर है, उसमें मेरे मित्र विरूपात्त के यहां मेरे नाम से जाकर कहना, तो वह तुम्हे बहुतसा धन देगा। गौतम प्रातःकाल होते ही मेरुब्रज नगर में गया और द्वारपाल से राजा के पास कहला भेजा कि—मैं नाड़ीजङ्घके कहने से तुम्हारे पास आया हूं

विरूपाक्ष यह समाचार पाकर प्रसन्न हुआ और तुरन्त बुलवाकर गौतम को अपने पास आसन पर बिठलाया और गोत्र नाम आदि बूझा। गौतम ने अपना गोत्र ही बताकर कहा, कि-अब तो मैं म्लेच्छ देश में रहता हूं, मैं बड़ा दरिद्री हूं। राजाने समझा कि-यह मूर्ख है जो शाखा प्रवर तक नहीं जानता परन्तु मित्र ने भेजा था, इस लिये सन्मान करके उससे कहा, कि-कलको कार्तिकी पूर्णिमा के कारण मेरे यहां एक हजार ब्राह्मण जिमाये जायँगे, उस समय तुम भी आना, गौतम प्रसन्न होकर दूसरे दिन ब्राह्मणों के साथ जीमने गया, विरूपाक्ष ने जिमाकर गौतम को भी सबों के साथ दक्षिणामें एक भार सोना दिया। गौतम सुवर्ण शिर पर धरे लिये जारहाथा, उसी समय मार्गमें नाड़ीजङ्घ बक मिला, उसने गौतम को भोजन कराकर पंखोंसे हवाकी और कहा, कि-मित्र!आज रात को यहीं रहजाओ, थकगए हो, कल चलेजाना गौतम ठहरगया, मित्रको ठंड न लगे, इसलिये द्वारपर आग जलादी और दोनोंजने पास२सोरहे। गौतम मनमें विचारनेलगा, कि-इतना बोझा उठाना पड़ेगा और मेरे पास कुछ खाने को है नहीं,विना खाये चला नहीं जायगा और इस सुवर्ण को छोड़ कर भी नहीं जासकता, इसलिये इस नाडीजंघको ही मारकर मांस लेचलूं ऐसा खोटा विचार करके निर्दयी गौतमने उपकार करनेवाले प्रेमी मित्रके ऊपर सोतेमे ही एक हुई जलती लकड़ी डालकर मारडाला और उसके मांसको पकाकर चलदिया। प्रतिदिन के नियमानुसार मित्र नाड़ी जंघके न आनेसे विरूपाक्षने सोचाकि-क्या बात है, कहीं किसी ने मार तो नहीं डाला मुझे उस म्लेच्छाचरण ब्राह्मणके ऊपर सन्देह होता है, यह विचार कर अपने पुत्रको नाडीजंघके घर भेजा, उसके घरमें हड्डियें पड़ी हुई मिलीं, यह समाचार पाकर विरूपाक्ष और उसकी प्रजाने बडा शोक किया तथा राजाने गौतमको पकड़ने के लिये राक्षस भेजे, वह पकड़कर लाये और गौतम के पास न,

जङ्घका मांस निकला सो विरूपाक्षने राक्षसोंसे कहा, कि-जाओ इसको मारकर खाजाओ, परन्तु राक्षसोंने उसके मांसको खाना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि-कृतघ्नीका मांसखाने में भी दोष है, फिर राजाने मित्रकी हड्डियें और मांस इकट्ठा करके दाह कराया उसकी चितामें आकाशमार्ग से जातीहुई कामधेनुके स्तनमेंसे दूध की एक बूंद टपकपडी, तवतो नाडीजङ्घ अँगड़ाई लेताहुआ उठ बैठा और गौतम को न देखकर विरूपाक्षसे बूझा कि-गौतम कहां है। राजाने कहा कि-उसने तुझे मारडाला था, इसकारण हमने उस को मारडाला, यह सुनकर वह वहुत ही व्याकुल हुआ। इतने में ही इन्द्र आकाशसे उतर कर आया और कहा, कि-नाड़ीजङ्घ सदा स्वर्गमें जाता था, परन्तु ब्रह्माकी सभामें नहीं आता था, इसलिये ब्रह्माने शापदिया था, कि—गौतमके हाथसे तेरी मृत्यु होगी और फिर उसको वारण करनेको कहा था कि-कामधेनुके प्रतापसे जी जायगा, यह सुनकर नाडीजङ्घने इन्द्रसे कहाकि—तू मेरा मित्र है तो इस गौतम ब्राह्मण को जीवित कर, जवतक यह नहीं जियेगा, तवतक मैं कुछ काम नहीं करूँगा, इस पर इन्द्रने उसको जिला-दिया तब दोनो गलबैयां डालकर मिले और फिर सव अपने २ स्थानको चलेगए ॥ २५ ॥

न स्त्रीजितो भवेद्धीमान् गाढरागवशीकृतः ।
पुत्रशोकाद्दशरथो जीवं जायाजितोऽत्यजत् ॥

बुद्धिमान् पुरुषको गाढ प्रेमके वशमें होकर स्त्रीके हाथ विक नहीं जाना चाहिये, देखो-स्त्रीके जीते हुए राजा दशरथको पुत्रके शोक से प्राण त्यागने पड़े ॥ कौन नहीं जानता कि—केकयीको प्रेमवश उसको दो वरदान देकर राजा दशरथको प्राणसमान प्यारे पुत्र रामको वन भेजकर अपने प्राण खोने पडे थे ॥ २६ ॥

न स्वयं संस्तुतिपदैर्ग्लानिं गुणगणं नयेत् ।

स्वगुणस्तुतिवादेन ययातिरपतद् दिवः २७

मनुष्य अपने आप अपनी स्तुति के पद गाकर अपने गुणों को मैले न करै, देखो-अपने गुणोंका बखान करनेके कारण ययाति स्वर्गमें से गिरपड़ा ॥*॥ ययाति जब स्वगमें गया तो इन्द्रने बूझा, कि-तूने कौन२ पुण्यकर्म किये हैं? यह सुन ययातिने घमण्डसे फूल कर अपनी प्रशंसा करते हुए कहा, कि-मेरेसे पुण्यकर्म तो देवता भी नहीं कर सकते, मेरे तपका बड़ा प्रकाश है, ऐसी आत्मश्लाघा करनेके कारण तपका क्षय होकर उसको फिर भूमिपर आनापडा॥

त्यजेन्मृगयाव्यसनं हिंसयातिमलीमसम् ।
मृगयारसिकः पाण्डुः शापेन तनुमत्यजत् २८

जिसमें हिंसा की बडीभारी मलिनता है ऐसे शिकारके व्यसन को छोडदेय, देखो-शिकारके व्यसनी राजा पाण्डुको मुनिके शापसे प्राण त्यागने पडे॥*॥एक दिन राजा पाण्डु वनमें शिकार खेलने गया था, शिकार खेलते २ उसने मृगमृगीके रूपसे मैथुन करतेहुए किंदम ऋषिको स्त्रीसहित बाणसे मार गिराया, ऋषिका मैथुन आधा ही हुआ था अतः रङ्गमें भङ्ग होनेसे मरते समय ऋषिने शापदिया, कि-अरे पाण्डु ! तू स्त्रीके साथ मैथुन करते ही मरजा-यगा, तदनन्तर एक समय वनमें राजा पाण्डुने अपनी स्त्रीके साथ ज्यों ही मैथुन करना आरंभ किया त्यों ही मरगया ॥ २८ ॥

क्षिपेद्वाक्यशरांस्तीक्ष्णान्न पारुष्यव्युपप्लुतान्
वाक्पारुष्यरुषा चक्रे भीमः कुरुकुलक्षयम् ॥

मनुष्यको निर्दयीपनसे भरेहुए वाणीरूप बाण किसीके भी नहीं मारने चाहियें, देखो-कठोर वचनरूपी बाणोंसे विंधनेपर भीमने क्रोधमें भरकर कुरुकुलका नाश करडाला ॥ * ॥ दुर्योधन ने पाण्डवोंको जुएमें जीतकर कहा कि-तुम वनमें चलेजाओ

तुम्हे राज्य नहीं मिलेगा तथा द्रौपदीको भी अनुचित वचन कहे इससे भीमसेनने क्रोधमें भरकर दुर्योधनकी जो दशाकी और कुरुकुलका जैसा समूल नाश हुआ सो किसीसे छिपा नहीं है २९

परेषां क्लेशदं कुर्यान्न पैशुन्यं प्रभोः प्रियम् ।
पैशुन्यं न गतौ राहोश्चन्द्रार्कौ भक्षणीयताम् ३०

अपने स्वामीको प्रिय लगनेवाली भी दूसरोंकी ऐसी चुगली न करै, कि–जिससे दूसरोंको क्लेश पहुंचे, देखो–चुगलीके कारण ही राहु, सूर्य चन्द्रमाको निगलजानेवाला शत्रु बनगया ॥*॥ जब देव दानव मिलकर समुद्र मथनेलगे तो उसमेंसे एक अमृतका कलश निकला उसको देखकर देवदानवों में झगड़ा होनेलगा देवता कहते थे हम लेंगे और दानव कहते थे कि–हम लेंगे यह देख नारायण मोहिनी स्त्रीके रूपमें आकर कहनेलगे कि–तुम क्यों लडते हो, मैं तुम्हारी बातका फैसला किये देती हूं, इस पर उन्होंने कहा कि–अमृतकलश हम दोनोको बाँट दो तो कुछ विवाद नहीं है, तदनन्तर देवता और दानव अलग २ बैठे परन्तु राहु सूर्य चन्द्रमा के बीचमें छुप कर बैठ गया, मोहिनी पहिले देवताओंको अमृत पिलाने लगी, यह देख कर दानव घबडाये, परन्तु मोहिनीके रूपपर आसक्त होने के कारण कुछ बोले नहीं मोहिनी पिलाती २ ज्योंही राहु के पास आई और उस के मुखमें अमृत डालने को थी, कि–इतने में ही सूर्य चन्द्रमा ने सेन से कहदिया कि–यह देवता नहीं है दैत्य है, यह सुनते ही मोहिनी रूप विष्णु ने उसका शिर काट लिया, इस कारण वह अमृत उसके कण्ठ से नीचे नहीं उतरा तथा उसका मस्तक और धड अमर होगए तथा दिव्यरूप होकर ग्रहों में गिनेजानेलगे, तब से राहु सूर्य तथा चन्द्रमा से द्वेष रख कर सदा उनको दुःख देने लगा, जो कि–हमको ग्रहणरूप से दीखा करता है ॥ ३० ॥

कुर्यान्नीचजनाभ्यस्तां न याञ्चां मानहारिणीम्।
बलियाञ्चापरः प्राप लाघवं पुरुषोत्तमः ॥३१॥

मनुष्य नीच पुरुष की आचरण कीहुई और प्रतिष्ठा को नष्ट करनेवाली भिक्षा कभी न मांगे। देखो-राजा बलिसे भीख मांगने में भगवान् भी लघुता को प्राप्त हुए अर्थात् उनको छोटासा बनना पडा इसलिये जहां तक होसके भीख किसीसे कभी न मांगो॥३१॥

न जातूल्लङ्घनं कुर्यात्सतां मर्मविदारणम् ।
चिच्छेद वदनं शंभु ब्रह्मणो वेदवादिनः ॥

मर्मस्थानमें कष्ट पहुंचानेवाला सत्पुरुषोंका अपमान कभी न करे, देखो शङ्करने वेद पढनेवाले ब्रह्माके मस्तक काटडाले थे॥*॥ पहिले ब्रह्माके पांच मुख थे, उनमेंसे चारसे वेद पढ़ा करता था, और पांचवें मुखसे गधेकी समान ढेंचू ढेंचू शब्द किया करता था एक दिन शङ्कर मिलनेको गए तो ब्रह्माका पांचवां शिर रेंकने लगा तो वह शिवको बहुत बुरा मालूम हुआ, इसकारण उन्होंने तत्काल पांचवें शिरको काटडाला। इसलिये यथाशक्ति अच्छे वचन बोले, जिससे सब प्रसन्न रहें, कठोर शब्द दूसरेके क्रोधको उभार देता है (यह कथा कल्पित प्रतीत होती है) ॥ ३२ ॥

न बंधुसंबंधिजनं दूषयेन्नापि वर्जयेत् ।
दक्षयज्ञक्षयायाभूत्त्रिनेत्रस्य विमानना ॥३३॥

बांधवोंको और संबंधियोंको दूषण न लगावे तथा उनका त्याग भी न करै, देखो-जामाता शङ्करका अपमान करना दक्षके यज्ञ के नाशका कारण हुआ था॥ * ॥ दक्षने अपने यज्ञमें देव दानव आदि सबको न्योता दिया, परन्तु अपनी पुत्री सती और जामाता शंकरको नहीं बुलवाया, यह बात शंकरको बुरी लगी, जब अनेकों को जाते देख सतीने शंकरसे जानेकी आज्ञा मांगी तब उन्होंने

कहा, कि-मैं तो कहता नहीं, तेरी इच्छा हो चली जा, परन्तु इस का परिणाम अच्छा नहीं होगा, इसप्रकार पतिके निषेध करने पर भी सती यज्ञमें गई, परन्तु पिताने उसका आदर नहीं किया, तब तो सतीने दुःखित होकर यज्ञमें अपना शरीर त्यागदिया, यह समाचार पाते ही शङ्करने वीरभद्र आदि गणोंको भेजकर दक्षके यज्ञका विध्वंस करदिया, इसलिये यथाशक्ति संबन्धियोंसे मेल रखना चाहिये ॥ ३३ ॥

न विवादमदान्धः स्यान्न परेषामनर्षणः ।
वाक्पारुष्याच्छिरश्छिन्नं शिशुपालस्य शौरिणा

विवाद करनेके मदमें अन्धा नहीं बनजाना चाहिये और दूसरों की उन्नति देखकर डाह भी नहीं करना चाहिये, देखो-कठोर वचन बोलनेके कारण श्रीकृष्णने शिशुपालका शिर काटडाला था ॥ * ॥ राजा युधिष्ठिरके यज्ञमें अनेकों राजे आये थे, यज्ञकी समाप्ति होने पर जब पूजन का अवसर आया तो युधिष्ठिरने बूझा कि-पहिले किसका पूजन हो, इसपर सबने कहा कि--पहिले श्री कृष्ण का पूजन हो, परन्तु शिशुपाल द्वेषवश कहनेलगा, कि-उस ग्वालेकी पूजा पहिले नहीं होसकती, वह तो व्यभिचारी और स्वजनघातक है, इत्यादि बहुतसे कुवचन कहे, परन्तु सौ गाली सुन कृष्णने चक्रसे उसका गला काटडाला ॥३४॥

गुणस्तवेन कुर्वीत महतां मानवर्द्धनम् ।
हनूमानभवत्स्तुत्या रामकार्यभरक्षमः ॥३५॥

वड़ोंके गुण बखान कर उनकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये, देखो बखान करनेसे हनुमान् जी श्रीरामचन्द्रजीका काम करनेमें समर्थ हुए ॥*॥ बखान करनेसे हनुमान्जी की शूरता उमड़ आई छोटे या बडे का ज्यों२ बखान करो त्यों २ वे अधिक हौंसलेसे काम करते हैं ॥ ३५ ॥

गुणेष्वेवादरं कुर्यान्न जातो जातु तत्त्ववित् ।
द्रौणिर्द्विजोऽभवच्छूद्रः शूद्रश्च विदुरः क्षमी ॥

सदा गुणोंका ही आदर करना चाहिये, जन्ममात्र से कभी कोई तत्त्वज्ञानी नहीं होता, देखो—अश्वत्थामा ब्राह्मण होनेपर भी स्वभाव से शूद्र था और विदुर जाति के शूद्र होनेपर भी क्षमावान् थे॥ * ॥ अश्वत्थामा ने अपने यजमान दुर्योधन का सर्वनाश और अपने पिता का मरण होने से चिड़िया कर अभिमन्यु की स्त्री के गर्भका नाश करने को ब्रह्मास्त्र छोडा, यह उसका तमोगुणी काम शूद्र केसा था और विदुर शूद्र होने पर भी कौरव पाण्डवोंके युद्धको रोकना चाहते थे जब वे नहीं माने तो विदुरजी युद्धके समय तीर्थयात्रा को चलेगए, यह उनका दयालु सात्त्विकस्वभाव ब्राह्मणों की सी प्रतिष्ठा कराता था, इस से सिद्ध हुआ, कि—पुरुष में बडप्पन केवल जातिसे नहीं होता, बडप्पन के गुणभी होने चहियें॥

नात्यर्थमर्थार्थनया धीमानुद्वेजयेज्जनम् ।
अब्धिर्दत्ताश्वरत्नश्रीर्मथ्यमानोऽसृजद्विषम् ॥

बुद्धिमान् को चाहिये, कि—अधिक धनकी याचना से किसीको दिक्क न करै, देखो—घोड़े, रत्न और लक्ष्मी आदि देने पर भी जब समुद्र को अधिक मथा तो अन्तमें उसने विष दिया॥ * ॥ किसीसे वार वार याचना करके उसको व्याकुल न करै, क्योंकि—ऐसा करनेसे अन्तको उसके मनमें धिकार उत्पन्न होजाता है ३७

वक्रैः क्रूरतरैर्लुब्धैर्न कुर्यात्प्रीतिसङ्गतिम् ।
वसिष्ठस्याहरद्धेनुं विश्वामित्रो निमंत्रितः ३८

कुटिल, अत्यन्त क्रूर और लोभियोंके साथ प्रीति और सङ्ग न करे, देखो—निमन्त्रण दियेहुए विश्वामित्रने वसिष्ठ की गौको छीन

लिया था ॥ * ॥ एक समय विश्वामित्र (जबकि ऋषि नहीं हुएथे) वनमें शिकार खेलने को जाकर मार्गमें वसिष्ठके आश्रम में गए, वसिष्ठने सत्कार किया तहाँ विश्वामित्रने नन्दिनी गा देखी जो कि-मुहमांगे पदार्थ देती थी, वह कामधेनु विश्वामित्रने वसिष्ठजी से मांगी, परन्तु उन्होंने नहीं दी तव विश्वामित्र जवरदस्ती गौ और बछड़े को पकड़ कर लेजाने लगे, तव गाने ऋषिसे कहा, कि-महाराज ! मेरी रक्षाकरो, ऋषिने कहा-हम ब्राह्मणोंका धर्म क्षमा है, अतः तू ही अपना प्रभाव दिखा, तब तो नन्दिनीने अपने शरीरमेंसे म्लेच्छ उत्पन्न करके उनसे विश्वामित्रको निकलवादिया यह देख विश्वामित्रने विचारा कि-तपोबलके सामने क्षत्रियका बल कुछ नहीं है, इसलिये राजपाट छोड़कर तपोबल प्राप्त करना चाहिये, तदनन्तर तप करके विश्वामित्र राजर्षि होगए ॥ ३८ ॥

तीव्रे तपसि लीनानामिन्द्रियाणां न विश्वसेत् ।
विश्वामित्रोऽपि सोत्कण्ठः कण्ठे जग्राह मेनकाम्

तीव्र तपमें लगीहुई भी इन्द्रियोंका विश्वास न करै, देखो-विश्वामित्रने (तपस्वी होनेपर भी) उत्कण्ठाके साथ मेनकाको कंठ से लगादिया ॥ * ॥ विश्वामित्रको तपसे डिगानेके लिये मेनका अप्सराने बहुतरे हावभाव किये परन्तु वह डिगे नहीं तव शरीर पर का वस्त्र खिसका कर नङ्गी ही उनके सामने वस्त्र लेने को दौडी तव तो विश्वामित्रने मोहित होकर उसको कण्ठसे लगालिया ३९

कुर्याद्वियोगदुःखेषु धैर्यमुत्सृज्य दीनताम् ।
अश्वत्थामवधं श्रुत्वा द्रोणो गतधृतिर्हतः ४०

वियोग आदि दुःखोंके आपड़ने पर अधीरता को त्यागकर धीरज रक्खै, अश्वत्थामाके मारेजाने का समाचार सुननेसे व्याकुल हुए द्रोणाचाय निष्प्रयोजन ही मारेगए। * ।।महाभारतके युद्ध

में अश्वत्थामा हाथीके मारेजाने की चर्चा फैलने पर द्रोणाचार्य को सन्देह हुआ, कि--कहीं मेरा पुत्र ही न मारागया हो, अतः युधिष्ठिर से बूझूं वह अवश्य ही सत्य बात कहेंगे, परन्तु युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि--'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा' अर्थात् अश्वत्थामा तो मारागया है पर मैं यह नहीं जानता कि--वह हाथी था या मनुष्य था। इससे द्रोणाचार्यने समझा कि-- बस मेरा पुत्र ही मरा है, अब जीकर क्या करना है, इसप्रकार अधीर होगए, यदि धीरज रखते तो विचारलेते कि--मेरा पुत्र चिरञ्जीव है वह कैसे मरसकता है, विपत्तिमें अधीर होनेसे विचारशक्ति कम हो जाती है, इसलिये धीरज रखना चाहिये ॥ ४० ॥

न क्रोधयातुधानस्य धीमान् गच्छेदधीनताम्
पपौ राक्षसवद्भीमः क्षतजं रिपुवक्षसः ॥ ४१ ॥

बुद्धिमान् पुरुषको क्रोधरूपी राक्षस के वशमें न होना चाहिये, देखो--क्रोधके वशमें हुए भीमसेन ने राक्षस की समान शत्रु की छाती का रुधिर पिया॥*॥भीमने द्रौपदी को नंगी करते समय क्रोध में भर कर प्रतिज्ञा की थी कि--मैं युद्ध में दुःशासन की छाती चीरकर इस का रुधिर पीऊंगा,फिर ऐसा ही किया,यह भीमसेन का निन्दनीय राक्षसीय कर्म था ॥ ४१ ॥

शंभुप्रसादे नो दद्यात्स्वविनाशास्पदे मतिम् ।
स्वक्षयायोद्धतं युद्धं वाणस्त्र्यक्षमयाचत ४२

जब प्रभु अपने ऊपर प्रसन्न होजाय, उस समय ऐसा विचार न करै, कि-जिसमें अपना नाश होजाय; देखो-वाणासुरने अपना नाश करनेवाला युद्ध शिवजी से मांगलिया था ॥ * ॥ वाणासुर के तप करनेपर प्रसन्न हुए शिव ने उससे कहा, कि--वर मांग, तब वाणासुरने कहा, कि-महाराज ! मेरे हजार हाथ करदो,

शिवने कहा-तथास्तु। फिर कहा कि-महाराज! मुझे इन हजार हाथोंके साथ लड़नेवाला भी तो दो, शिवने कहा-तथास्तु। तदनन्तर जब ऊषाका अनिरुद्धके साथ विवाह हुआ, यह बाणासुर को अच्छा नहीं लगा, इसलिये कृष्णके साथ लड़ा तब कृष्णने उसके हजारों हाथ काटडाले ॥ ४२ ॥

विद्योद्योगी गतोद्वेगः सेवयेदर्चयेद् गुरुम् ।
गुरुसेवापरः सेहे कायक्लेशदशां कचः ॥४३॥

विद्या के लिये उद्योग करने वाला पुरुष, घबराहट को त्यागकर अपनी सेवा से गुरुको सन्तुष्ट करै, देखो-कच शरीरान्त क्लेशकी दशातक को सहकर गुरुसेवा में लगा रहाथा ॥

* ॥ देवताओंने बृहस्पतिकुमार कच से कहा कि-तुम शुक्राचार्यके पास जाकर संजीवनी विद्या सीखआओ जिससे हमारी बाधा टले। यह सुनकर कच शुक्राचार्य के पास गया और वह इस की नम्रता को देखकर पढ़ाने लगे परन्तु संजीवनी विद्या नहीं सिखाई, कच पढ़ते समय गुरुपत्री देवयानीको खिलाया भी करता था। एक दिन कच गुरु की गौएं चराने वनमें गया था, तहां राक्षसों ने उस को मारकर भेड़िये को खिला दिया, जब साँझ को गौएं घर आगईं और कच नहीं आया तब देवयानी ने रोकर पिता से कहा, कि-कच को बुलाओ, तब शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या का प्रयोग करके उसको पुकारा, कच तत्काल भेड़िये के पेट को फाड़कर आगया, ऐसा दैत्यों ने कईबार किया और अंत को एक दिन जलाकर उसकी भस्म मद्यमें मिलाकर शुक्राचार्य को पिलादी, तब तो सांझ को न आने पर देवयानी ने फिर कहा कि-पिता जी कच को बुलादो, उन्होंने पुकारा तो कच ने उनके पेट में से ही उत्तर दिया, तब तो शुक्राचार्य विचारने लगे, कि-अब इसको जिलाऊँगा तो यह मेरा पेट फाड़कर

निकल सकेगा, अतः इसको पेटमें ही संजीविनी विद्या सिखादूँ, यह पेट फाड़कर निकल आवेगा और फिर मुझे जिलादेगा, तदनन्तर उसको संजीविनी विद्या सिखादी, तब वह पेट फाड़कर निकला और उसने शुक्राचार्य को जीवित करदिया, इसप्रकार उसने बड़ा कष्ट सहकर विद्या सीखी थी ॥ ४३ ॥

भक्तं शक्तं हितं रक्तं निर्दोषं न परित्यजेत् ।
रामस्त्यक्त्वा सतीं सीतां शोकशल्यातुरोऽभवत्

भक्त, शक्तिमान् , हितकारी, प्रीतिमान् और निर्दोष मनुष्य का त्याग न करै, देखो-रामचन्द्र सती सीता को त्यागकर शोक-रूपी शल्य से बड़े ही व्याकुल हुए थे ॥ * ॥ राम रावण को मार, सीता सहित घर आकर राज्य करने लगे तब दुर्मुख दूत को नगरमें यह समाचार लेने भेजा कि-लोग सीताको रावणके घर रहने के विषयमें क्या कहते हैं, उसने आकर कहा, कि-इस विषयमें लोग अच्छी चर्चा नहीं करते, तब तो रामने फिर सीता को लक्ष्मण के द्वारा वनको भेजदिया, परन्तु ऐसा करनेमें उन को शोक बहुत हुआ, क्यों कि-सीताकी समान उनका प्यारा भक्त और कोई नहीं था ॥ ४४ ॥

रक्षेत्ख्यातिं पुनः स्मृत्या यशःकायस्य जीविनीम्
च्युतः स्मृतो जनैः स्वर्गमिन्द्रद्युम्नः पुनर्गतः ॥

फिर स्मरण कराने के लिये यशरूप कायाको अमर करनेवाली प्रसिद्धि की रक्षा करै, देखो-स्वर्गमेंसे गिरेहुए इन्द्रद्युम्न को लोगोंने पहिचान लिया तब तुरन्त ही वह फिर स्वर्ग को चला गया ॥ * ॥ राजा इन्द्रद्युम्न स्वग मेंसे लौट कर मृत्युलोक में आया तब उसने अपने पुण्यों की याद दिलाने के लिये मार्कण्डेयसे कहा, कि-क्या आप इन्द्रद्युम्नको पहिचानते हैं ?

उन्होंने कहा-मैं तो नहीं पहिचानता, परन्तु हिमालय पर रहनेवाला प्रावाकर्ण्य उलूक मुझसे भी पुराना है, वह पहिचानता होगा, यह सुन इन्द्रद्युम्नने घोड़ा रूप धारण कर मार्कण्डेयसे कहा, कि-महाराज ! आप मेरे ऊपर बैठिये, मैं आपको तहाँ लेचलूं, यह सुन मार्कंडेय सवार होगए और दोनोंने प्रावाकर्ण्य के पास जाकर बूझा, तो उसने कहा, कि-मुझे इन्द्रद्युम्नकी याद नहीं है, परन्तु यहाँसे कुछ दूर इन्द्रद्युम्न नामक सरोवरमें नाड़ीजंघ बगला रहता हैं वह जानता होगा, तब तीनों ने नाड़ीजंघके पास जाकर बूझा कि-तू इन्द्रद्युम्नको पहिचानता है? उसने कुछ सोच-कर उत्तरदिया कि-इसी सरोवरमें अकूपार नामका कछुआ रहता है वह बतादेगा, तब सबोंने उसके पास जाकर बूझा, तो उसने उत्तर दिया कि-हाँ यह सरोवर उस राजाका ही बनवाया हुआ है, उसने बहुतसे यज्ञ भी किये थे, वह वड़ा प्रतापी और उदार था, इसप्रकार सबके सामने उसकी कीर्त्तिकी पहिचान होजाने पर वह फिर स्वर्गको लौटगया सार यह है, कि-ऐसे काम करै कि-जो हजारों वर्ष बीतजाने पर भी कायम रहैं, उनसे दूसरोंका उपकार हो और कर्त्ताको अखंड सुखमिलै ॥ ४५ ॥

न कदर्यतया रक्षेल्लक्ष्मीं क्षिप्रपलायिनीम् ।
युक्त्या व्याडीन्द्रदत्ताभ्यां हृता श्रीर्नन्दभूभृतः॥

अतिकृपणता करके लक्ष्मी (धन) की रक्षा न करै, क्योंकि-लक्ष्मी बहुत शीघ्र छोड़कर चलीजाती है, देखो—व्याडी और इन्द्रदत्तने युक्तिसे राजा नन्दकी लक्ष्मीको हरलिया था ॥ * ॥ पहिले इस भारतमें चक्रवर्त्ती राजा नन्दके पास बड़ी लक्ष्मी थी, उस समय इन्द्रदत्त, वररुचि और व्याडी तीन विद्यार्थी गुरुसे विद्या पढ़कर गुरुदक्षिणाके लिये धनसञ्चय करनेको नन्दराजके नगरमें गए, तहाँ जाकर सुना कि-नन्दका प्राणान्त होगया,

तब इन्द्रदत्तने कहा, कि--मैं योगबल से उसके शरीर में प्रवेश करेजाता हूं तब वररुचि मेरे पास मांगनेको आवे और व्याडी मेरे प्राणहीन शरीरकी रक्षा करता रहै, तदनन्तर ऐसा ही हुआ तब नन्दरूप बने इन्द्रदत्तने अपने मंत्री शकटार को आज्ञादी कि-एक करोड मुहरें वररुचिकोदेदो, शकटारको संदेह हुआ कि-यह नंद नहीं है, कोई और योगी है अपना काम बनाकर फिर शरीर को छोड़जायगा, इस कारण उसने नगरमेंके सब मुरदे ढुंढवाकर जलवादिये उनमें इन्द्रदत्तका शरीर भी भस्म होगया, इस पर इन्द्रदत्त पहिले दुःखीहुआ, फिर उसने वररुचिको अपना मंत्री बनालिया सार यह है, कि-धन चलायमान है, इससे यथारीति परमार्थ के काम करै कि-जो चिरकाल रहैं, नहीं धन तो किसी न किसी दिन चला ही जायगा ॥ ४६ ॥

शक्तिक्षये क्षमां कुर्यान्नाशक्तः शक्तमाक्षिपेत्।
कार्त्तवीर्यः ससंरम्भं बबन्ध दशकन्धरम्॥४७॥

जब अपने शरीरमें की शक्ति का नाश होजाय तो क्षमाको धारण करै, असमर्थ होकर शक्तिमान् से वैरभाव न करै, किन्तु शक्तिमान् होय तब ही अपना बल दिखावै, देखो-कार्त्तवीर्य ने क्रोध करकै रावणको बाँधलिया ॥ * ॥ एक समय कार्त्तवीर्य (सहस्रबाहु) सहस्रों स्त्रियोंको साथ ले नर्मदा में जलक्रीड़ा करने गया तहाँ अपने हजार हाथोंसे नदीके प्रवाहको रोककर क्रीड़ा करने लगा, पानी रुकनेके कारण जोरके साथ ऊपर किनारे पर आया तहाँ रावण बैठा पूजा कर रहा था, उसके मृत्तिकाके महादेव और पूजनके पदार्थ वहगए तब क्रोधमें भरकर सहस्रबाहुके पास आया और उसके साथ लडनेलगा, सहस्रबाहुने कुछ देरमें ही रावणको बाँधलिया ॥ ४७ ॥

वेश्यावचसि विश्वासी न भवेन्नित्यकैतवे ।
ऋष्यशृंगोऽपि निःसङ्गः शङ्गारिवेश्यया कृतः ।

सदा कपट करनेवाली वेश्या का कभी विश्वास न करै, देखो ऋष्यश्रृंग एकान्तमें रहते थे तो भी वेश्याने उनको श्रृंगारमें लीन करदिया था ॥ * ॥ एक समय राजा रोमपादके देशमें वर्षा नहीं हुई तब उससे ब्राह्मणोंने कहा, कि-ऋष्यश्रृंग ब्रह्मचारी वनमें तप करता है वह यहां आकर यज्ञ करावै तो वर्षा हो। तब राजा ने वेश्याओंको बुलाकर कहा कि-तुममें से जो चतुर हो वह ऋष्यश्रृंगको मोहित करके लावै, तो एक वेश्या अपनी लडकी को साथ लेकर तपोवनमें गई, जब ऋष्यश्रृंगके पिता कहीं चलेगए तब अपनी लडकीको भेजा, वह धीरे २ जाकर ऋष्यश्रृङ्गके पास बैठगई और प्रणाम किया, ऋष्यश्रृङ्गने आजतक कभी स्त्री नहीं देखी थी, अतः उसको ब्रह्मचारी जानकर ऋष्यशृङ्गने भी नमस्कार करके वेश्यासे कहा, कि-तुम कहांसे आये हो और तुम्हारा नाम क्या है ? लो यह फल खाओ और जल पीकर आराम करो, ऐसा कहकर दिये हुए फलोंको, उस वेश्याने फेकदिया और अपने साथ जो लड्डू लाई थी वह ऋष्यशृङ्गको देकर कहा, कि-महाराज ! हमें आपको नवना चाहिये, आप हमें नवे यह ठीक नहीं है, ऐसा कहकर ऋषिको हृदयसे लगालिया, इतनेमें ही सायंकाल होजाने से उनके पिताके आजानेका सन्देह करके वेश्या तहाँसे चलीगई, ऋष्यशृङ्ग लड्डू खाकर और उसके कोमल अङ्गों का स्पर्श करके मनमें बडे ही गद्गद होरहे थे और उस झंझटमें पिताके अग्निहोत्रकी तयारी तक करना भूलगए तथा उस वेश्याके चलेजानेसे उदास हुए बैठे थे इतनेमें ही उनके पिताने आकर देखा, कि-आज होमकी तयारी आदि कुछ नहीं हुई है, फिर पुत्रके ऊपर दृष्टि डाली तो उसके मुख पर उदासी छाई हुई थी, यह देखकर

बूझा, कि--बेटा! क्या आज आश्रममें कोई आया था, ऋष्यशृङ्ग ने कहा, कि-हाँ एक मुनिकुमार आया था, उसकी जटा काली२ और रेशम की डोरीकी समान गुथीहुई थी, उसके होठ मूंगे की समान थे, उसका शब्द कौयलसे भी मधुर था, उसके कण्ठकी माला बड़ी ही चमचमा रही थी, उसकी छाती पर दो मांसके पिंड थे, उसकी कमर बहुत ही पतली थी, जब वह चलता था तो उसके चरणों में न जाने क्या बजता था, हाथों में दो छोटी २ मालाएं पहर रहा था, अधिक क्या कहूं, वह बड़ा ही सुन्दर था। उसने जो मुझे फल और अन्न खानेको दिया उसका कुछ जुदा ही स्वाद था, वह जबसे गया है तब से मेरा मन उदास होरहा है, यह सुनकर उसके पिता विभांडक मुनिने कहा, कि—बेटा! ऐसे ब्रह्मचारियोंका विश्वास न करना, क्योंकि-बहुतसे दैत्य मुनिवेश में आते हैं और फल खिलाकर मारडालते हैं, यह सुनकर ऋष्य-श्रृङ्ग शान्त हुआ और वेश्या के आनेसे जो प्रभाव पड़ा था वह मिटगया। फिर कई दिन बाद जब विभांडक मुनि वनमें गए उस समय वह वेश्या ऋष्यश्रृङ्ग के पास आई, ऋष्यश्रृङ्गने उससे कहा कि-मुझे तू यहां से लिवाचल, अब यहां मेरा जी नहीं लगता, तब वह वेश्या ऋष्यश्रृङ्ग को लेकर राजा लोमपाद के नगरमें आगई, इस प्रकार एकान्त वनमें रहनेवाले ऋषि भी जब वेश्या पर विश्वास लाकर तपोभ्रष्ट होगए, फिर संसारी मनुष्यकी तो बात ही क्या है? इसलिये सत्पुरुषों को कुलटा स्त्री और वेश्याओं के सङ्गसे सदा बचना चाहिये ॥ ४८ ॥

अल्पमप्यवमन्येत न शत्रुं बलदर्पितः ।
रामेण रामः शिशुना ब्राह्मण्यदययोज्झितः ४९

मनुष्य अपने बलका अभिमान करके छोटेसे शत्रुका भी तिर-स्कार न करै, देखो-बालक रामचन्द्रने, ब्राह्मणों पर दयालुता होने के कारणसे ही परशुरामको छोड़दिया था ॥ * ॥ जब जनकपुरी

के सीतास्वयंवरमें रामचन्द्रजीने शिवधनुषको तोड़कर सीता व्याही थी तब धनुष टूटनेके शब्दको सुनकर परशुराम आये और क्रोधमें भरकर बलके घमण्ड में आकर कहा कि—मैंने निःक्षत्रिय पृथ्वी करदी तो भी अभी क्षत्रियवीर बचरहा, इसने मेरे होते हुए मेरे गुरु का धनुष तोड डाला, ऐसा विचार कर रामके साथ युद्ध करने को तयार हुए परन्तु हारगए, तब रामचन्द्रने ब्राह्मण होनेके कारण प्रणाम करके जानेकी आज्ञा देदी ॥ ४९ ॥

न विश्वसेद्धिंसकानां क्रूराचारवतां तथा।
जगद्वैरी जरासन्धः पाण्डवेन द्विधा कृतः ५०

हिंसा आदि करनेवाले और अत्यन्त क्रूर आचरणवाले पुरुषों का विश्वास न करै, देखो-जगत्के वैरी जरासन्धने पाण्डवोंका विश्वास किया था तो भीमसेनने उसके दो टुकड़े करदिये ॥*॥ राजसूय यज्ञके समय युधिष्ठिरने सब राजाओंको वशमें करलिया था परन्तु जरासन्ध वशमें न हुआ तब कृष्ण, अर्जुन और भीमसेन ब्राह्मणके वेषमें उसके यहां गए और उससे युद्ध भिक्षा मांग ली, सत्यवादी जरासन्ध 'तथास्तु' कहकर नगरके बाहर अखाडे में भीमसेनके साथ सत्ताईस दिनतक लड़ा अन्तमें अट्ठाईसवें दिन भीमसेनने पकड़कर उसको चीरडाला इसलिये शत्रुका विश्वास न करै इसमें प्राण जाते रहते हैं ॥ ५० ॥

औचित्यप्रच्युताचारो युक्त्वा स्वार्थं न साधयेत्
व्याजबालिवधेनैव रामकीर्त्तिः कलङ्किता ५१

उचित आचार से भ्रष्ट होकर युक्तिके द्वारा अपना स्वार्थ न साधै देखो बालिको निष्प्रयोजन बहाना निकाल कर मारनेसे रामचन्द्र जीकी कीर्त्तिमें कलङ्क लगगया ॥ छ ॥ जब रावण वनमें सीताको हरकर लेगया तब सीताकी सुध लगानेके लिये रामलक्ष्मणने वनमें वानरोंके राजा सुग्रीवसे मित्रताका सुग्रीव भी दुःखी था, इसकारण

दोनोंने एक दूसरेकी सहायता करना स्वीकार किया सुग्रीवने कहा मेरी स्त्री और राज्य को वालिने छीनलिया उसको आप दिलादें तो मैं आपकी सीताका पता लगा दूँगा, यह बात स्वीकार करके रामने बालिकोमारकर सुग्रीवको स्त्री और राज्य दिलादिया इसप्रकार वालिके अपराधका विचार किये बिना एकसाथ उसको मारडाला इसलिये बहुतसे लोग रामकी कार्त्तिमें यह कलङ्क लगाते हैं अतः अपने स्वार्थके लिये विनाबिचारे दसरेकी हानि न करें ५१

वर्जयेदिन्द्रियजये विजने जननीमपि ।
पुत्रीकृतोऽपि प्रद्युम्नः कामितः शम्वरस्त्रिया

इन्द्रियोंको जीतलेने पर भी पुरुष एकान्तमें अपनी माताके साथ भी न बैठे देखो—शम्बरासुरकी दासी रतिने प्रद्युम्नको पुत्र करके रक्खा था तो भी वह उसके ऊपर आसक्त होगइ थी ॥*॥ रुक्मिणीके पुत्रके हाथसे शंबरासुरकी मौत थी अतः उसके उत्पन्न होते ही शंवरासुरने गुप्तरूपसे उसको पलँग परसे उठाकर समुद्र में डालदिया तब इस बालकको एक मच्छ निगलगया वह मच्छ शंबरासुरके मच्छीमारके हाथलगा उसने लाकर शंबरासुरकी रसोईमें देदिया रसोइयेने मच्छको काटातो उसमेंसे शंबरासुरका समुद्रमें फेंका हुआ बालक प्रद्युम्न निकलपडा यह बात शम्बरासुरको वताई उसके कोई पुत्र नहीं था इसकारण उसने इसे ही पुत्र मानकर आज्ञा दीकि — हमारी दासीको सौपदो वह खिला पिलाकर इसे पालेगी तब वह कुमार रतिको सौंपागया रतिने उसको पाल पोसकर बड़ा किया तदनन्तर रति उसके ऊपर आसक्त होकर एकान्तमें उसके साथ विलास करनेलगी इसलिये बुद्धिमान् पुरुष एकान्तमें मा बहिन और बेटीके पास भी न बैठे क्योंकि—इन्द्रियें बडी बलवान् हैं, ये विद्वान् को भी भ्रष्ट कर देती हैं ॥ ५२ ॥

न तीव्रतपसां कुर्याद्धैर्यविप्लवचापलम् ।
नेत्राग्निशलभीभावं भवोऽनैषीन्मनोभवम् ५३

तीव्र तपस्या करनेवाले तपस्वियोंकी स्थिरतामें बाधा डालनेवाली चपलता न करै, देखो–शिवजीने कामदेव को नेत्रकी अग्नि से भस्म करडाला था ॥ * ॥ जब सतीने दक्षके यज्ञमें देहको त्यागदिया तब शिवजी हिमालय पर जाकर तपस्या करनेलगे उसी समय तारकासुर देवताओंको कष्ट देनेलगा तब सब देवता विचारनेलगे कि-यह किसके हाथसे मारा जायगा ! अन्तमें निश्चय हुआ कि–इसकी मृत्यु शङ्कर के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय के हाथसे है, फिर सबोंने विचार किया, कि–किसप्रकार शिवका बिवाह करायाजाय तो हमारा काम सिद्ध हो, फिर एक दिन हिमालय पर तप करतेहुए शङ्करके समीप पार्वती पूजा करने को आई, यह अवसर पाकर देवताओंने कामदेवसे कहा, कि–इस समय यदि तू अपना वाण शङ्कर के मारेगा ता हमारा काम वनजायगा, यह सुनकर कामदेवने अपना वाण शङ्कर के ऊपर छोड़ा, तव तो शिवजीने अपना तीसरा नेत्र खोल कर उसकी ओरको अग्नि की समान दृष्टि करी,दृष्टि पड़ते ही नेत्रमेंसे निकलेहुए अग्नि ने कामदेव को भस्म करदिया, इसलिये एकान्तमें ध्यान लगाए बैठेहुए तपस्वियों को छेड़ना ठीक नहीं है ॥ ५३ ॥

न नित्यकलहाक्रान्ते सक्तिं कुर्वीत कैतवे ।
रुक्मी फलकदुर्घातैर्द्यूते हलभृता हतः ५४

जो सदा कलह करनेमें फँसा रहता हो ऐसे कपटीका विश्वास न कर, देखो–जुएमें कपट करने के कारण बलदेवजीने रुक्मी को मुद्गरों से पीटकर मारडाला था ॥ * ॥ बलदेवजी भतीजे के विवाह के प्रसङ्गमें रुक्मीके घर गए थे, तहां जुआ होने लगा, उस में जीता नहीं था तो भी रुक्मी कह उठा, कि–मैं जीतगया, उस

की इस कपट की बातको सुनकर बलदेवजीने शिरपर मुद्गर मार कर उसको मारडाला ॥ ५४ ॥

प्रभुप्रसादे सत्याशां न कुर्यात्स्वप्नसन्निभे ।
नन्देन मन्त्री निहितः शकटालो हि बन्धने ५५

जो स्वप्न की समान मिथ्या होती है ऐसी, राजा की कृपा पर किसी प्रकारकी सच्ची आशा न रक्खै, देखो-राजा नन्दने शकटार मन्त्री को वंधनमें डालदिया था ॥*॥ नन्द के मृत शरीर में जब इन्द्रदत्तने योगशक्ति से प्रवेश किया था तब उस समय नन्दके मन्त्रीने विचारा कि-अभी नन्दका पुत्र बालक है और इस नन्दके शरीरमें किसी दूसरेने प्रवेश करलियाहै, यह अपना काम साधकर निकलजायगा तो यह राज्य नहीं रहसकेगा, अतः इसमें प्रवेश करनेवालेका शरीर खोजकर जलवादूँ, यह विचार कर उसने सब नगर के मृत शरीर ढुंढवाकर जलवादिये नन्दरूपधारी इन्द्रदत्तने विचारा कि—शकटारने यह अच्छा किया इसकारण वह पहिले शकटारके ऊपर दयालु होगया यह देख शकटारने विचारा कि—यह नंद मुझसे डरता है इसकारण वह प्रजापर आतङ्क बैठानेलगा और राजाका भी राजा बनगया, इस कारण योगनन्द धीरे २ उसके ऊपर रुष्ट होनेलगा, फिर मंत्री शकटारने गुप्तरीतिसे योगनन्दको मारकर सत्यनंदके पुत्रको राज्य देदिया उस नए बननेवाले राजाने उसके ऊपर बड़ी दया-लुता दिखाई, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि—योगनन्दको शकटारने मरवादिया था तब तो उसने शकटारको पकडकर कैद में डलवादिया ॥ ५५ ॥

न लोकायतवादेन नास्तिकत्वेऽर्पयेद्धियम् ।
हरिर्हिरण्यकशिपुं जघान स्तंभनिर्गतः ॥५६॥

प्रत्यक्षको ही प्रमाण माननेवाले लोकायतिक नास्तिककी कुतर्क

सुनकर अपनी बुद्धिमें नास्तिकता न लावै, देखो--श्रीहरिने खंभे-मेंसे निकलकर हिरण्यकशिपुका नाश किया था ॥ * ॥ अधर्मी हिरण्यकशिपु ईश्वर को नहीं मानताथा- उसका पुत्र प्रल्हाद जब पांच वर्षका हुआ तो उसको पढ़ने बैठाला, वह पाठशालामें ईश्वरके नामके सिवाय और कुछ नहीं पढताथा, एकदिन प्रल्हादका पाठ सुननेको बुलाया तो उसने ईश्वर का नाम ही सुनाया, तब तो हिरण्यकशिपुको बडा ही क्रोध आया और फिर ऐसा करने पर उसको मारडालने का भय दिखाया, तो भी प्रल्हादने ईश्वरके नामसे मन नहीं हटाया और अपने पिताका नास्तिकपन उसको नहीं भाया, अन्तमें एकदिन एक लोहे के खंभको तपाया और उससे प्रल्हादको बांधनेका हुक्म सुनाया तथा यह कहा कि-यदि ईश्वर होगा तो अभी दीखेगा, फिर दूत प्रल्हादको खंभसे बांधने ही को थे कि-तत्काल नृसिंह रूप भगवान् उसमेंसे प्रकट हुए और नास्तिक हिरण्यकशिपु को मारडाला नास्तिकों की अन्तमें दुर्दशा ही होती है ॥ ५६ ॥

अत्युन्नतपदारूढः पूज्यान्नैवावमानयेत् ।
नहुषः शक्रतामेत्य च्युतोऽगस्त्यावमाननात् ॥

जो मनुष्य अधिक ऊँचे पदको प्राप्त होजाय वह पूजनीय पुरुषों का अपमान न करै, देखो-राजा नहुष इन्द्रपदको पागया था, परंतु अगस्त्यका अपमान करनेके कारण वह स्वर्गसे भ्रष्ट होगया ॥ * ॥ जब राजा नहुष स्वर्गमें जाकर इन्द्रासन पर बैठा और बड़ेभारी राज्यकी लगाम हाथमें आई तबतो इसको बड़ा अभिमान होगया और इन्द्राणीसे बोला कि-तू मुझे वर ले, इन्द्राणीने उत्तर दिया कि-ऐसे वाहन पर सवार होकर आ, जिस पर कोई न चढ़ा हो तो मैं तुझे वरूँगी, तब नहुषने ऋषियोंको बुला उन्हें पालकीमें जोता और उसपर बैठकर इन्द्राणीके पासको चलदिया, मार्गमें पालकी ऊँची नीची होनेलगी, तब नहुषने मदान्ध होनेके कारण ऋषियों

से कहा, कि–रुको मत 'सर्प सर्प' अर्थात् चलो चलो, यह सुनकर ऋषियोंने शाप दिया, कि–जा तू मृत्युलोकमें सर्प (साँप) होजा, इसप्रकार शाप होनेसे नहुषको स्वर्गसे भ्रष्ट होकर सर्प बनना पडा इसकारण बडा पद प्रतिष्ठा वा बहुतसा धन पाकर नम्र रहना चाहिये और स्त्रीके मोहमें पडकर भी किसीको कष्ट न देय ॥ ५७ ॥

संधिं विधाय रिपुणा न निःशङ्कः सुखी भवेत्
संधिं कृत्वाऽवधीदिन्द्रो वृत्रं निःशङ्कमानसः ॥

शत्रुके साथ मेल करके निःशङ्क होजानेवाला सुख नहीं पाता, देखो-वृत्रासुर इन्द्रके साथ मेल करके निःशङ्क रहने लगा था तो उसको इन्द्रने मारडाला ॥ * ॥ वृत्रासुर और इन्द्रका बड़ा भारी वैर था, परन्तु वृत्रासुरका प्रताप बडाभारी था, अतः इन्द्रने उस के साथ मेल करलिया और फिर अवसर पाते ही इन्द्रने दधीचि के हाडका अस्त्र बनालिया तथा वृत्रासुरको युद्धके लिये पुकार कर उस वज्र अस्त्रसे मारडाला, इसलिये मित्रता करलेने पर भी शत्रुका विश्वास न करै, सचेत रहै ॥ ५८ ॥

हितोपदेशं श्रुत्वा तु कुर्वीत च यथोचितम् ।
विदुरोक्तमकृत्वा तु शोच्योऽभूत्कौरवेश्वरः ॥

हितकारी उपदेश को सुनकर उसके अनुसार उचित काम करै, देखो–दुर्योधन विदुरके उपदेशके अनुसार काम न करके सर्वथा शोक करने योग्य होगया॥*॥ जब दुर्योधन पाण्डवोंसे वैर करके उनको सताने लगा तब विदुरने उसको बहुत समझाया, परन्तु उसने एक बात नहीं मानी और उलटा पाण्डवों से अधिक द्वेष दिखाने लगा, इसकारण अन्तमें कुमौत मरा, इससे सिद्ध हुआ कि-जो हितूका उपदेश नहीं मानता वह अवश्य ही आपत्तिमें पडता है॥

बहुवन्नाशनलोभेन रोगी मन्दरुचिर्भवेत् ।

प्रभूताज्यभुजो जाड्यं दहनस्याप्यजायत ॥

अधिक अन्न खानेके लोभसे मनुष्य रोगी होजाता है और उस के पेटकी अग्नि मन्द पडजाती है, देखो-अधिक घी खानेसे अग्नि जैसा प्रतापी भी ठंडा पडगया था ॥ * ॥ श्वेतकी राजाने बहुत से यज्ञकिये थे उनमें अधिक घी पीनेसे अग्निको अजीर्ण होगया था वह अजीर्ण जब कृष्णकी सहायतासे अर्जुनने खांडव वनको जलाया था तब दूर हुआ इसलिये जहांतक होसके हलका भोजन करै तो रोगी न होगा ॥ ६० ॥

यत्नेन शोषयेद्दोषान्नतु तीव्रव्रतैस्तनुम् ।
तपसा कुम्भकर्णोऽभून्नित्यानिद्राविचेतनः ६१

उद्योग करके शरीरमें के दोषोंको दूर करै, केवल परम कठिन व्रतोंसे शरीरको सुखा न डालै, देखो-कुम्भकरण तप करके वरदानसे पाई हुई निद्रामें अचेत रहने लगा ॥ * ॥ जब उग्र तप करते २ कुम्भकर्ण को हजारों वर्ष वीतगए तब ब्रह्माने प्रसन्न हो उसके पास आकर कहा, कि-बेटा ! क्या चाहता है वर मांग ? इससमय कुंभकर्ण की जीभ पर ऐसी सरस्वती बैठी कि-उसने इन्द्रासन के बदले निद्रासन मांगलिया ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कह दिया, कुम्भकर्णने पहिले अपने मनमेंके दोषोंको दूर नहीं किया था इस कारण उसका तप सार्थक नहीं हुआ,इसलिये तप करके केवल शरीरको सुखा देनेमें कुछ लाभ नहीं है,किंतु मनको निर्मल रखकर धीरे २ दोषोंको दूर करै, बहुतसे लोग व्रत करके मुरदे से बनजाते हैं, परन्तु अन्तःकरण मलिन होनेसे उनके पातकोंका नाश नहीं होता ॥ ६१ ॥

स्थिरताशां न बध्नीयाद् भुवि भावेषु भाविषु ।
रामो रघुः शिबिः पाण्डुः क गतास्ते नराधिपाः ॥

भूतल पर भावी पदार्थोंमें दृढ़ आशा नहीं बाँधना चाहिये, देखो—राम, रघु, शिवि और पाण्डु राजे आज कहां हैं? ॥*॥ पृथ्वीपर अमुक पदार्थ मेरे हैं ऐसी दृढ आशा बाँधकर न बैठे क्योंकि—हम अमर नहीं हैं कि--जो अनन्तकाल तक यहाँ ही बैठे रहेंगे, देखो--इस भूमिपर राम राज्य करगए, इसमें रघुने फिर शिविने और तदनन्तर पाण्डुने भी एकछत्र राज्य किया था, परन्तु उनमेंसे कोई भी आज नहीं है उनकी भूमिपर अब दूसरे ही राजे राज्य कररहे हैं, फिर ऐसी भूमि और धनके लिये ममता क्या करनी ? जो ममताको छोडकर समदृष्टिसे वर्त्ताव करता है वह सुख पाता है ॥ ६२ ॥

विडम्बयेन्न वृद्धानां वाक्यकर्मवपुःक्रियाः ।
श्रीसुतः प्राप वैरूप्यं विडम्विततनुर्मुनेः॥६३॥

वृद्ध पुरुषों की बात, काम और शरीर की अवहेलना न करै, देखो-मुनिके शरीरका हास्य करनेसे साम्ब कुरूप होगया था॥*॥ एक दिन यादवों के बालकोंने साम्बके पेटसे लोहा बांध उसको दुर्वासा ऋषिके पास लेजाकर बूझा, कि-इसके पेट से क्या पैदा होगा ? ऋषि ने कहा मूसल, वस मूसल ही हुआ और उसका शरीर कुरूप होगया, इसलिये बडोंसे दिल्लगी न करै, क्यों कि वे अपनी शक्ति से क्षणभर में हानि करसकते हैं ॥ ६३ ॥

नोपदेशेऽप्यभव्यानां मिथ्या कुर्यात्प्रवादिताम्
शुक्रषाड्गुण्यगुप्तापि प्रक्षीणा दैत्यसन्ततिः ॥

अभव्य पुरुषोंको उपदेश देनेमें वृथा प्रयास न करै, देखो-शुक्राचार्यने नीतिके छः गुणोंसे रक्षा करी तो भी दैत्योंकी सन्तान नष्ट होगई॥*॥शुक्राचार्यने अपने शिष्य दैत्योंको साम,दान,दण्ड, भेद, इन चारसे तथा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव इन नीतिके छः गुणोंसे समझाया तो भी वे मूर्ख ही रहे

और अपना बचाव न करसके, इसलिये मूर्खको कुछ उपदेश देना भैंसको भागवतकी कथा सुनाने की समान है ॥ ६४ ॥

न तीव्रदीर्घवैराणां मन्युं मनसि रोपयेत् ।
कोपेनापातयन्नन्दं चाणक्यः सप्तभिर्दिनैः ६५

चिरकाल तक बडाभारी वैरभाव रखनेवाले मनुष्यके मनमें क्रोध उत्पन्न न करै, देखो-चाणक्यने कोपके कारणसे सात दिन में नवनन्दका नाश करदिया था ॥ * ॥ एक दिन राजा नन्दने अपने यहां श्राद्धमें जिमानेके लिये बहुतसे ब्राह्मणोंको न्योता दिया था, जब सब ब्राह्मण जेमनेको तयार हुए तो नन्दकी दृष्टि चाणक्यके ऊपर पडी, यह चाणक्य ब्राह्मण विद्वान् होनेपर भी एक आँखसे काणा था, शास्त्रमें लिखा है कि-श्राद्धमें पूर्णाङ्ग ब्राह्मणोंको जिमावै, इसलिये राजाने उसको अङ्गहीन देखकर ब्राह्मणोंकी पंक्तिमेंसे उठादिया, यह बात चाणक्यको बुरी लगी, परन्तु क्या करै, उस समय वह ब्राह्मणोंमेंसे उठगया और चलते समय प्रतिज्ञा करगया, कि-यदि मैं ब्राह्मणके वंशमें पैदा हुआ हूं तो इस नन्दका नाश कराकर इसका राज्य दूसरेको दिलवा दूँगा, तब ही इन खुलेहुए बालोंको बाँधूंगा, चाणक्यने अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करके ही अपनी चोटी बांधी थी, इसलिये नीतिके साथ में संसारके व्यवहार को देखकर भी कोई बात कहै, विद्वान् के अङ्गोंकी परीक्षा न करै और घोर वैर करनेवाले को कभी कुपित न करै ॥ ६५ ॥

न सतीनां तपोदीप्तं कोपयेत् क्रोधपावकम् ।
वधाय दशकण्ठस्य वेदवत्यत्यजत्तनुम् ॥ ६६ ॥

तपके प्रभावसे दमकती हुई सतीकी क्रोधाग्निको दीप्त न करै, देखो-कुपित करीहुई वेदवतीने रावणको मारनेके लिये अपने

शरीरको त्यागदिया था ॥*॥ बृहस्पति का पुत्र कुशध्वज वनमें तप कररहा था, उसके वेदवती नामवाली पुत्री हुई तो उसने विचारा कि – मैं इसका विवाह विष्णु के साथ करूँगा- परन्तु वह ऐसा विचार करते २ ही मरगया, फिर एक समय उसकी पुत्री वेदवती बनमें तप कररही थी उसको, उधरको जाते हुए रावणने देख पाया और उस कोमलाङ्गी सुन्दरी को देख कर कहने लगा, कि–अरी ! तू इस भयानक बनमें अपने शरीरको तपसे कष्ट देती हुई दुःख क्यों उठारही है ? मेरे साथ विवाह करके महलमें आनन्द कर, यह सुनकर वेदवती को क्रोध आगया और लंपट रावणने उसकी चोटी पकड ली, तव तो वेदवती उसके हाथमें से अपने केश छुटाकर एकसाथ बोलउठी कि–जा दूसरे जन्ममें मैं तेरे प्राण लूंगी और फिर तुरंत चिता बनाकर उसमें भस्म होगई तथा दूसरे जन्ममें सीता होकर उसने प्राण लिये । इससे यह शिक्षा लो कि--किसी धर्माचरण करनेवाले को धर्मसे डिगाने का साहस न करो, तथा पवित्र स्त्री मनसे भी वरे हुए पतिको न त्यागे, कोई कुटिल धर्मसे डिगावे तो भी चाहे प्राण चले जायं, परन्तु पातिव्रत्य की रक्षा करे ॥६६॥

गुरुमाराधयेद्भक्त्या विद्याविनयसाधनम् ।
रामाय प्रददौ तुष्टो विश्वामित्रोऽस्त्रमण्डलम् ॥

विद्या और विनय देनेवाले गुरुकी भक्तिके साथ सेवा करै देखो–प्रसन्न हुए विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीको सब अस्त्रविद्या सिखा दी थी ॥ * ॥ विश्वामित्र अपने यज्ञकी रक्षा करनेके लिये राजा दशरथसे राम लक्ष्मणको माँगकर लेगए थे यह कथा सब ही रामायण पढ़नेवाले जानते हैं । गुरुजनोंकी सेवा भक्तिके साथ कीजाय तो वह चित्तसे विद्या पढ़ाते है और उसका फल अच्छा होता है ॥ ६७ ॥

वसु देयं स्वयं दद्याद्बलाद्धापयेत्परः ।
द्रुपदोपऽह्रवी राज्यं द्रोणेनाक्रम्य दापितः ॥

जो धन दूसरे का देना हो उसको, दूसरा दबाव डालकर लेगा इससे तो अपने आप ही दे देना अच्छा है, देखो-द्रोणाचार्यने राजा द्रुपदको कैद कर उसका राज्य फिर उसको देदिया था ॥*॥ बालकपने में द्रुपद और द्रोणाचार्यमें बड़ा प्रेम था, वे गुरुके यहां साथ ही खाते और साथ ही खेलते थे, उस समय द्रुपदने द्रोणाचार्यसे कहा था, कि--मैं राजगद्दी पर बैठूं तो तुम आना, मैं तुम्हें निहाल करदूँगा, अतः द्रुपद राजा हुआ तब द्रोणाचार्य उसके पास एक गौ लेने गए तब द्रुपदने अहङ्कारमें भरकर कहा, कि—राजाका मित्र राजा ही होता है, तू भीख मांगनेवाला मेरा मित्र कैसे हो सकता है ? यह द्रुपदकी घमण्डका बात द्रोणाचार्यकी छाती में बज्रसी चुभी और वह इस बातका बदला लेनेकी चिन्तामें रहे। बहुतसा समय बीतजाने पर जब कौरव और पांडवोंने उनसे अस्त्र विद्या सीखी और शिक्षा पूरी होने पर उन्होंने कहाकि-महाराज आप गुरुदक्षिणा मांगिये, तब द्रोणाचार्यने कहा, कि-तुम राजा द्रुपदको बाँध कर यहां लेआओ मैं इसको ही गुरुदक्षिणा मानूंगा, यह सुनकर पाण्डवोंने कहा, कि-पहिले कौरवोंको भेजो और हम पीछेसे जायँगे, गुरु ने ऐसा ही किया और कौरव रथोंमें बैठकर पांचाल नगर पर चढ़ गए तब पद भी नगरसे बाहर निकल आया और कौरवोंको भगादिया, तब अर्जुन आदि पाण्डव चढ़कर गए और द्रुपदको जीत गुरुके पास बांधकर ले आये, द्रुपद को देखते ही द्रोणाचार्यने कहा कि-क्यों द्रुपद अहंकार की जो बात कही थी, उसकी याद है ? द्रुपदने लज्जासे मुख नीचेको कर लिया, मुखसे कुछ नहीं बोला, तब द्रोणाचार्यने उसका आधा राज्य लेकर आधा लौटादिया, इससे यह शिक्षा मिलती है, कि-

चाहेकैसा ही ऊँचा पद पाकर अहंकार न करै अहंकारीको अन्त में नीचा ही देखना पड़ता है ॥ ६८ ॥

साधयेद्धर्मकामार्थान् परस्परमबाधकान् ।
त्रिवर्गसाधना भूपा बभूवुः सगरादयः ॥६९॥

धर्म, अर्थ और कामको इसप्रकार साधै, कि-एक से दूसरेमें बाधा न पड़ै, देखो—सगर आदि राजे धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गको साधने वाले होगए हैं ॥ * ॥ इसप्रकार धन पैदा करै, कि- उसमें किसी प्रकारका दोष न लगै, अनीति न हो और धर्ममें भी बाधा न आवे, ऐसे ही कामनाओं को भी उचित रीति से धन उठाकर पूर्ण करै। धर्मका आचरण भी इसप्रकार करै, कि- जिसमें पीछे से पछताना न पड़ै, इसप्रकार धर्म-अर्थ-काम का सेवन करने से अवश्यही सुख मिलता है ॥ ६९ ॥

स्वकुलान्न्यूनतां नेच्छेत्तुल्यः स्यादथवाधिकः ।
सोत्कर्षेऽपि रघोर्वंशे रामोऽभूत्स्वकुलाधिकः ॥

अपने कुलकी जैसी प्रतिष्ठा हो उससे कम प्रतिष्ठाको न चाहे, अपनी उतनी ही प्रतिष्ठा रक्खे और यदि होसकै तो अपनी प्रतिष्ठाको बढ़ावे, देखो-रघुकुलकी बड़ीभारी उन्नति थी तो भी राम अपने कुलमें सबसे अधिक प्रतिष्ठित हुए ॥ * ॥ जहाँतक होसकै दिखावटी बड़प्पन न रक्खै, किन्तु सदा सच्ची सत्वगुणी प्रतिष्ठा चाहै, यदि अपनेमें उत्तम गुण होंगे तो वह कस्तूरीकी समान अपने आप ही प्रसिद्ध होजायँगे ॥ ७० ॥

कुर्यात्तीर्थाम्बुभिः पूतमात्मानं सततोज्ज्वलम् ।
लोमशादिष्टतीर्थेभ्यः प्रापुः पार्थाः कृतार्थताम् ॥

सदा अपने शरीरको तीर्थके जलोंसे पवित्र और प्रकाशित

करै, देखो—पाण्डव लोमश ऋषिसे तीर्थोंका माहात्म्य सुनकर इच्छित तीर्थोंसे कृतार्थ हुए थे ॥ * ॥ महात्माओंसे उत्तम तीर्थों की बातें सुनै, अवसर पाकर तीर्थयात्रा करै, तीर्थपर जानेसे मन में धर्मभाव जागता है, ऐसा प्रभाव साधारण स्थानोंमें नहीं होता इसकारण ही शास्त्रमें तीर्थयात्रा करना लिखा है॥ ७१ ॥

आपत्कालोपयुक्तासु कलासु स्यात्कृतश्रमः ।
नृत्तवृत्तिर्विराटस्य किरीटी भवनेऽभवत् ७२

दुःखके अवसरों पर काममें आनेवाली कलाओंको सीखनेमें परिश्रम करै, देखो-अर्जुन राजाविराटके घर नर्त्तक बनकर रहाथा ॥*॥ पाण्डवोंके जुएमें हारजाने पर कौरवोंने ठहरालिया था, कि बारह वर्ष वनमें और एकवर्ष छिपकर रहना पड़ेगा इसलिये पांचों पाण्डव और द्रौपदी बारह वर्ष वनमें रहचुके तब विचार किया कि विराटके यहां चलकर रहैं तथा रूप बदल राजाविराटके पास जाकर कहा कि-हम सब पाण्डवोंके नौकर हैं उनके वनमें चलेजाने पर हम आपकी सेवा करनेकी आशासे यहां आये हैं, यह सुनकर विराटने उनको यथायोग्य स्थानपर नियत करदिया,कंकनामधारी युधिष्ठिर को जुआ खिलाने पर, वल्लव नामधारी भीमको रसोइयेके काम पर,तंतिपाल नामधारी सहदेवको गोशालाकी रक्षा पर और ग्रथिक नामधारी नकुलको घुड़सालपर रक्खा तथा हीजड़ेका वेष रखने वाले बृहन्नला नामधारी अर्जुनको अपनी पुत्रीको महलमें नाचना गाना सिखानेपर रक्खा। अर्जुनको नाचनेकी कला आती थी वह इस समय काम आई इसलिये मनुष्यको हरएक प्रकारकी कला सीखनी चाहिये ॥ ७२ ॥

अरागभोगसुभगः स्यात्प्रसक्तविरक्तधीः ।
राज्ये जनकराजोऽभन्निर्लेपोऽम्भसि पद्मवत् ॥

जिसकी बुद्धि असमर्थ होनेपर भी वैराग्यवाली हो वह विषयोंमें राग और भोग करनेपर भी उनमें लिपटता नहीं है, देखो राजा जनक अपने राज्यको चलाता था, तो भी जलमें पड़ेहुए कमलकी समान उसमें लिप्त नहीं होता था ॥*॥ राजा जनक बड़ा विरक्त था, वह राज्य करता हुआ भी योगी और विदेह कहलाता था, क्योंकि–वह राज्यके बंधनमें नहीं था, उसकी आत्मनिष्ठा इतनी बढ़गई थी कि-एक समय सेवकोंने आकर कहा कि–महाराज! आग लगगई हैं, सब नगर जलाजाता है, परन्तु जनक ईश्वरपूजनमें से नही उठा और सेवकोंको उत्तर दिया, कि–"मिथिलायां दह्यमानायां न मे किंचन दह्यति" अर्थात्-नगरी के जलनेमें मेरा कुछ नहीं जलता है। सारयह है, कि-मनुष्य सब भोगोंको भोगै परन्तु उनमें अन्तःकरणसे लिप्त न होजाय, क्योंकि—लिप्त होनेका परिणाम बुरा होता है, शर्करा यद्यपि मीठी है और उसका गुण भी अच्छा है, परन्तु उसको चाबो तो वह पेटमें जाकर मल होजाती है इसलिये अति सर्वत्र वर्जयेत् ७३

अशिष्यसेवया लाभलोभेन स्याद्गुरुर्लघुः।
संवर्त्तयज्ञयाच्ञाभिर्लज्जां लेभे बृहस्पतिः ७४

जो अपना शिष्य न हो उससे सेवा करानेका लोभ न करै तो गौरव मिलता है, चाहे तिससे सेवा करानेका लोभ हो, तो बडप्पन नहीं मिलता, देखो—बृहस्पतिको संवर्त्तसे यज्ञकी याचना करने पर लज्जित होना पड़ा ॥*॥ मृत्युलोकका राजा संवर्त्त यज्ञ करनेकी इच्छासे, हिमालयके वनमें जहां शिव विराजमान थे, तहाँ पहुंचा और उनकी स्तुति करनेलगा, शिवजी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कहने लगे, कि,—जा तेरे यज्ञ की सब सामग्री सोने की होगी, राजा शिवको प्रणाम कर अपने घर आया और यज्ञके सब पात्र सोनेके बनवाये तथा बहुतसे ब्राह्मणोंको बुलाकर यज्ञका आरंभ

करदिया,इस समाचारको सुनकर बृहस्पति दुःखसे दुबले होगये, एक दिन उनके घर आने पर इन्द्र ने कहा, महाराज ! आप उदास क्यों हैं ? मुझसे सेवक के होतेहुए आपको क्या चिंता है ? यह सुनकर बृहस्पति ने कहा, मृत्युलोकमें राजा संवर्त्त यज्ञ कर-रहाहै, उस यज्ञमें सब पात्र सोनेके हैं और बड़े २ ऋषि यज्ञ कराने को आये हैं ऐसा सुवर्णमय यज्ञ करनेपर भी उस राजाने मुझे नहीं बुलाया, इसका मुझे शोक है, इन्द्रने कहा-मैं अग्नि को भेजकर आपको आचार्य बनवाता हूं, तदनन्तर इन्द्रके भेजे अग्निके कहने पर संवर्त्त ने कहा कि-यह नहीं होसकता, वह बड़े हैं, इन्द्रके गुरु तथा वेदविद्या के भण्डार हैं,परन्तु इस मनुष्यके यज्ञमें उन को आचार्य का पद नहीं मिलसकता। अग्नि ने कहा कि–यज्ञके देवताओं में इन्द्र मुख्य है, उस इन्द्र के गुरुको आचार्यपद देनेसे तुमको स्वर्गमें उत्तम स्थान मिलेगा, इसपर भी राजाने नहीं माना तो अग्निने स्वर्गमें आकर बृहस्पतिसे कहा, कि-संवर्त्त ने अपने मानुषी यज्ञमें आपको आचार्य बनाना उचित नहीं माना, यह सुनकर बृहस्पतिने लज्जित होकर नीचेको मुख करलिया ॥ ७४ ॥

नष्टशीलां त्यजेन्नारीं रागवृद्धिविधायिनीम् ।
चन्द्रोच्छिष्टाधिकप्रीत्यै पत्नी नित्याप्यभूद्गुरोः

अधिक प्रेम करनेवाली भी व्यभिचारिणी स्त्री का त्याग कर देय,देखो-चन्द्रमाकी भोगी और निंदाकी पात्र हुई भी तारा नाम की स्त्री बृहस्पति से बड़ा प्रेम किया करती थी ॥*॥ बृहस्पति की स्त्री तारासे जबरदस्ती व्यभिचार करके चन्द्रमाने उसमें बुध को उत्पन्न किया था, बृहस्पतिने यह बात इन्द्रसे कही,इन्द्र चन्द्रमा से लडने गया, चंद्रमाने शुक्राचार्यकी शरण ली फिर दोनोंमें घोर युद्ध हुआ, कोई न हटा तब विष्णुने आकर रोका और बृहस्पति अपनी स्त्रीको बड़े आदरके साथ लेगया, बुध चन्द्रमाके पास

रहा, वह कलङ्क आजतक प्रसिद्ध है, इसलिये व्यभिचारिणी स्त्रीको फिर स्वीकार न करे ॥ ७५ ॥

न गीतवाद्याभिरतिर्विलासव्यसनी भवेत् ।
वीणाविनोदव्यसनी वत्सेशः शत्रुणा हृतः ७६

गाने बजानेके प्रेममें मग्न होकर विलासका व्यसनी नहीं होना चाहिये, देखो—वीणाके विनोदके व्यसनी राजा वत्सेशको शत्रुने पकड़ लिया था ॥छ॥ चंडमहासेन राजाकी पुत्री वासवदत्ता बड़ी रूपवती थी, उसके ऊपर राजा वत्सेश बडा मोहित होगया, कन्या का पिता भी विवाह करदेनेको राजी था, परन्तु महाअभिमानी वत्सेश चाहता था कि—कन्याका पिता मेरे घर आकर विवाह करजाय, महाचंडसेनने विचार किया कि-मैं बलात्कारसे वत्सेशको पकड़ लाऊ गा, बहुत दिनो तक दोनों अपना २ अवसर देखते रहे, वत्सेशको वीणा बजानेमें मग्न होनेका बड़ा व्यसन था, यह जानकर महाचण्डसेनने एक लकडीका पोला हाथी बनवाकर उसके ऊपर हाथीकी खाल मढवादी और उसके भीतर कुछ योधा बैठा दिये तथा उसको विंध्याचल पर रखवादिया, वत्सेश विंध्याचल पर हाथी आनेका समाचार पा उसको पकड़ने के लिये गया और हाथीसे कुछ दूर पड़ाव डालकर हाथीको अपने पास बुलानेके लिये वीणा बजाता हुआ उसके स्वरमें मग्न होगया यह अवसर पाते ही हाथीके भीतर बैठेहुए योधाओंने निकलकर राजा वत्सेशको पकड़लिया तब चंडमहासेनने अपने घर लेजाकर उसके साथ वासवदत्ताका विवाह करदिया इसप्रकार वत्सेश वीणाके व्यसनसे पकड़ागया इसलिये ईश्वरभक्तिके सिवाय और किसी व्यसनमें मग्न नहीं होजाना चाहिये ॥ ७६ ॥

उद्वेजयेन्न तैक्ष्ण्येन रामाः कुसुमकोमलाः ।
सूर्यो भार्याभयोद्विग्नस्तेजोऽभिजनशातयत् ॥

फूलकी समान कोमल स्त्रियोंके ऊपर कठोरता करके उनको उदास न करै, देखो--सूर्यने अपनी स्त्रीको निर्भय करनेके लिये अपने तेजको कम करलिया था ॥*॥ विश्वकर्माकी पुत्री छाया जब सूर्यके साथ विवाह होकर सुसरालमें आई तो पतिके तेजको न सहसकी और यह बात अपने पितासे कही तब विश्वकर्माने तत्काल सूर्यको बुला सान पर चढ़ाकर तेज कम करदिया तब से छाया सुखसे रहनेलगी सार यह है कि--स्त्रियोंके ऊपर कठोरता न करके सुसरालमें आई हुई वधूको कोमल बातोंसे वशमें करलेय तो गृहस्थका काम बडे आनन्दसे चलता है ॥ ७७ ॥

पद्मवन्न नयेत्कोषं धूर्त्तभ्रमरभोज्यताम् ।
सुरैः क्रमेण नीतार्थः श्रीहीनोऽभूत्पुराम्बुधिः ७८

मनुष्य कमलकी समान अपने धनभण्डारको धूर्त्तरूपी भौंरों को न खिलाडालै देखो-क्रमसे देवताओंने सब पदार्थ लेलिये इसकारण समुद्र लक्ष्मीहीन होगया ॥*॥ पहिले समुद्रमें अनेकों रत्नथे देवताओंने उसको मथा तो समुद्रने अपनेमेंकी वस्तुएं देना आरम्भ करदिया, ज्यों २ उत्तम पदार्थ मिलतेगए, देवता मथते रहे अन्तमें समुद्रको निर्धन करडाला तबसे समुद्र नाममात्रका रत्नाकर और खारी रहगया। सार यह है कि-याचकोंके दबानेपर वा मीठी २ बातोंमें आकर अपना सर्वस्व न देडाले जिससे कि अन्तमें दरिद्रहोकर दुःख उठाना पडै ॥ ७८ ॥

नोपदेशामृतं प्राप्तं भग्नकुम्भनिभस्त्यजेत् ।
पार्थो विस्मृतगीतार्थः सासूयः कलहेऽभवत्

उपदेशरूपी अमृत मिलै तो उसको फूटेहुए घडेकी समान खो न देय, देखो--गीताके अर्थको भूलनेपर अर्जुनने ईर्ष्याके साथ कलह किया था ॥ * ॥ श्रीकृष्णजीने अर्जुनको गीता सुनाई

परन्तु अर्जुनको गीताका उपदेश याद नहीं रहा इसकारण कौरवोंके साथ ईर्ष्या करके युद्ध किया ॥ ७९ ॥

न पुत्रायत्तमैश्वर्यं कार्यमार्यैः कदाचन ।
पुत्रार्पितप्रभुत्वोऽभूद्धृतराष्ट्रस्तृणोपमः ॥ ८० ॥

बुद्धिमान् मनुष्योंको जीवितदशामें अपना सर्वस्व पुत्रके अधीन नहीं करदेना चाहिये, देखो-धृतराष्ट्र सब प्रभुता पुत्रको देदेने से तृण की समान तुच्छ होगया था ॥ * ॥ धृतराष्ट्र ने अंधा होने के कारण अपनी जीवित दशा में ही राज्य की लगाम बड़े पुत्र दुर्योधन को सौंप दी दुर्योधन शूरवीर होने पर भी दूसरे की उन्नति को नहीं देखसकता था अतः उस की प्रतिष्ठा नहीं थी और अहङ्कारी होने के कारण वह अपने घरके बड़े बूढ़ों को भी कुछ नहीं गिनता था, इससे ही उसकी बड़ीभारी हानि हुई और अन्त में मारागया, उसके सामने धृतराष्ट्र की कुछ चलती ही नहीं थी। धन सम्पदा हाथ में आजाने से पुत्र समझता है कि अब तो पिता के पास कुछ है ही नहीं इसलिये वह सेवा न करके उलटा तिरस्कार करने लगता है, दूसरे तो धनवान् की प्रतिष्ठा करते हैं, परन्तु सन्तानके हाथमें धन गया कि-वह अन्धा होकर मस्त होजाता है, जवानीमें धन पाकर चाहे सो करता है, इसलिये ऐसा करनेवाले पिता पुत्रका और अपना दोनोंका बुरा करते हैं ॥ ८० ॥

न शत्रुशेषदूष्याणां स्कन्धे कार्यं समर्पयेत् ।
निष्प्रतापोऽभवत्कर्णः शल्यतेजोवधार्दितः ॥

शत्रुपक्षका होनेसे दूषण लगानेयोग्य मनुष्यके कन्धेपर अपने कामका भार न रक्खै, देखो-शल्यके अपमानसे कर्ण प्रतापहीन होगया था ॥ * ॥ महाभारतका युद्ध होते समय कर्णके पास कोई योग्य सारथी नहीं था तब दुर्योधनने अर्जुनके मामा शल्यको

सारथी बनाना चाहा और उससे कहा कि-जैसे श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथी हैं तैसे ही तू कर्णका सारथी है, यह सुन गर्वसे फूला हुआ शल्य, राजा होने पर भी सारथी बनगया, वह शल्य, माद्री का भाई होनेसे पाण्डवोंका मामा लगता था, एकदिन पांडवोंसे मिलनेको आते समय मार्गमें एक विश्रामस्थलको देखकर कहा, कि-यहां कोई कुंज बना देय तो जो मांगे वही दूं, इसपर दुर्योधन ने आकर कुंज बनवादी और कहा कि--मेरी सेनासहित सहायता करो, शल्यको स्वीकार करना पड़ा, फिर युधिष्ठिरसे मिलने गया तो उन्हों ने कहा, कि-कोई हानि नहीं है, परन्तु कर्ण के सारथी बनो तो उसके तेजको हर लेना, तदनन्तर जब शल्य कर्ण का सारथी बना तब भांजोंका हित करनेकी इच्छासे रथ हांकते २ शल्यने कर्णसे कहा, कि-तुममें ऐसा तेज नही है जो तुम अर्जुनको जीत सको, वह बड़ा प्रतापी है, यह सुनकर कर्णके युद्धोत्साह का नाश होगया, इसलिये जिसमें जरा भी शत्रुपक्षका लगाव होय उसको अपना कोई काम न सौंपे ॥ ८२ ॥

न लब्धे प्रभुसंमाने फलक्लेशं समाश्रयेत् ।
ईश्वरेण धृतो मूर्ध्नि क्षीण एव क्षपापतिः॥८२॥

जबतक बड़ेकी ओरसे सन्मान न मिले तबतक फलमें क्लेश ही मिलता है, देखो-शिवजीने चन्द्रमाको माथे पर धारण किया है, तो भी वह क्षीण ही रहता है ॥ * ॥ चन्द्रमाको दक्षकी सत्ताईस कन्याएं व्याही गईं, परन्तु वह उनमेंसे रोहिणीका अधिक सन्मान करता था, यह बात और कन्याओंने अपने पितासे कही तो दक्ष ने चन्द्रमाको शाप दिया कि-जा तू क्षीण रहैगा, जिस दिनसे यह शाप हुआ तबसे ही उसको शङ्करके मस्तक पर मणिका स्थान मिला तो भी बड़े का धिक्कार मिलनेके कारण उसकी वृद्धि नहीं हुई मनुष्य वा देवता चाहे तिस पदको पा जाय, परन्तु जबतक बड़े

प्रतिष्ठा न करें तबतक उसमें गौरवकी दमक नहीं आती, इसलिये जहांतक होसकै अपने कुटुंबियोंमें बडप्पन पानेकी चेष्टा करै ८२

श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं न त्यजेत्साधुसेवितम् ।
दैत्यानां श्रीवियोगोऽभूत्सत्यधर्मच्युतात्मनाम् ॥

सत्पुरुषोंके पालन कियेहुए और श्रुति स्मृतियों में कहेहुए आचारका त्याग न करै, देखो-सत्यधर्मसे भ्रष्ट होनेके कारण दैत्योंकी लक्ष्मीका नाश होगया ॥ * ॥ विचारने पर मालूम होगा कि-सरल मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको कुछ अड़चन नहीं पड़ती, बहुतसे लोग अपनी छोटीसी बुद्धिके अन्धे विचारके कारण अहङ्कारमें आकर प्रचीनमर्यादाको नष्ट करना चाहते हैं, उनके तुच्छ विचारसे, जैसे देवता निर्बल होने पर भी बलवान् दैत्योंको हरा कर अपना राज्य चलाते थे, और दैत्य निर्धन होकर इधर उधर भटकते फिरते थे तैसे ही हम भी निर्धन होकर धक्के खाते हैं ॥

श्रियः कुर्यात्पलायिन्या बन्धाय गुणसंग्रहम् ।
दैत्यांस्त्यक्त्वाश्रितादेवा निर्गुणान्सगुणाः श्रिया

भागजानेवाली लक्ष्मीको बांधनेके लिये बड़े २ गुणों का (रस्सों का वा गुणोंका) संग्रह करै, देखो-गुणहीन दैत्योंको त्यागकर लक्ष्मीने गुणवान् देवताओंका आश्रय लिया था ॥ ८४ ॥

पदाग्निं गां गुरुं देवं न चोच्छिष्टः स्पृशेद् घृतम्
दानवानां विनष्टा श्रीरुच्छिष्टस्पृष्टसर्पिषाम् ॥

मनुष्य अपने पैरसे अग्नि, गुरु, गौ और देवताओंका स्पर्श न करै तथा जूठे मुख घीको न छुए, जूठेमुख घीको छूनेवाले दैत्यों की लक्ष्मीका नाश होगया ॥ ८५ ॥

प्रातिलोमविवाहेषु न कुर्यादुन्नतिस्पृहाम् ।

ययातिः शुक्रकन्यायां सस्पृहो म्लेच्छतां गतः॥

अपने से नीची या ऊँचीजातिमें विवाह करनेकी इच्छा न करे, देखो-शुक्रकी कन्यापर आसक्त होनेके कारण राजा ययाति म्लेच्छ की समान आचारभ्रष्ट होगया था॥ * ॥ राजा ययातिने वनमें शिकारको जानेपर कुएमें पड़ीहुई एक कन्याको बाहर निकाला तो उसने अपनेको शुक्रकी कन्या देवयानी बताकर राजाके साथ विवाह करनेकी इच्छा दिखाई और कहने लगी, कि-तुमने मेरा हाथ पकड़ा है इसलिये तुम मेरे पति हो, राजा भी गान्धर्व विवाह करके उसको अपने घर ले आया वह दैत्यगुरुकी कन्या धर्मकार्यमें ध्यान न देकर विषयविलासमें ही मग्न रहती थी, राजा भी उसके साथ में वैसा ही होकर अपने धर्माचरणको भूलगया इसलिये अपने समान वर्णकी कुलवती कन्याके ही साथ विवाह करै॥ ८६॥

रूपार्थकुलविद्यादिहीनं नोपहसेन्नरम्।
हसन्तमशपन्नन्दी रावणं वानराननः॥८७॥

रूप, धन कुल और विद्या आदिसे रहित मनुष्यकी हँसी न करै देखो-वानरकेसा मुखवाले नन्दी की हँसीकी तो उसने रावणको शाप देदिया था॥ * ॥ एक समय रावण बिमानमें बैठ हिमालय पर विहार करता २ शङ्कर पार्वतीके क्रीड़ास्थानके पास पहुंचते ही रुक गया, रावण विचारने लगा, कि-मेरी गति क्यों रुकगई, फिर मंत्रीसे खोज कराने पर मालूम हुआ, कि-शंकर विहार कर रहे हैं, इसलिये विमान आगे नहीं जासकता, परन्तु रावण शिव जीके पासको जानेलगा, मार्गमें नंदीगणका पहरा था, उसने रोका रावणने मुख उठाकर देखा तो नन्दीका मुख वानर केसा था रावणने हँसकर कहा कि-अरे वानर! तू मुझे रोकनेवाला कौन है? अभी तुझे कुचलडालूंगा, यह घमंडकी बात सुनकर नंदीने शाप दिया कि-जा तू वानरोंके हाथसे हा माराजायगा॥ ८७॥

बन्धूनां वारयेद्वैरं नैकपक्षाश्रयो भवेत् ।
कुरुपाण्डवसंग्रामे युयुधे न हलायुधः ॥८८॥

जब भाइयों भाइयोंमें आपसमें कलह होय तो उनको लडनेसे रोकदेय, एकका पक्ष लेकर कलहको बढ़ावे नहीं, देखो-कौरव पाण्डवोंके संग्रामके समय बलदेवजीने किसीका भी पक्ष लेकर युद्ध नहीं किया ॥ * ॥ कौरव पाण्डवोंके कलहका समाचार पा बलदेवजीने आकर उनको समझाया परन्तु दुर्योधन नहीं माना और उनसे कहा आप मेरे गुरु हैं मेरी ओरसे लड़िये, बलदेवजी ने उत्तर दिया कि-मैं किसीकी भी सहायता नहीं करूँगा और इस झंझटसे बचनेके लिये वह तीर्थयात्रा करने चलेगए ॥ ८८ ॥

परोपकारं संसारसारं कुर्वीत सत्त्ववान् ।
निदधे भगवान् बुद्धः सर्वसत्वोद्धृतौ धियम् ८९

सत्वगुणी पुरुष, संसारमें सारभूत परोकारका काम करै, देखो भगवान् बुद्धने अपनी बुद्धि सब प्राणियोंके उद्धारमें लगादी थी मनुष्य संसारमें कोई अच्छा काम करना चाहे तो परोपकार करै देखो बुद्धने संसारको त्यागदेने पर भी हिंसकोंको हिंसा करनेसे रोकनेका काम अपने ऊपर लिया था ॥ ८९ ॥

विभृयाद्बन्धुमधनं मित्रं त्रायेत दुर्गतम् ।
बन्धुमित्रोपजीव्योऽभूदर्थिकल्पद्रुमो बलिः ८९

निर्धन कुटुम्बीका पालन करै और दुर्गतिको प्राप्त हुए मित्रकी रक्षा करै, देखो-याचकोंके लिये कल्पवृक्षरूप राजा बलि बन्धु और मित्रोंका पोषण किया करता था ॥ * ॥ जब दैत्यवंशमें यह उदारता होचुकी है तो दैवी प्रकृतिवाले यदि धन होते हुए अपने कुटुम्बी और मित्रोंकी सहायता न करें तो उनको राक्षसों से भी नीच समझना चाहिये ॥ ९० ॥

न कुर्यादभिचारोग्रवध्यादिकुहकाः क्रियाः ।
लक्ष्मणेनेन्द्रजित्कृत्याद्यभिचारमयो हतः ॥

मनुष्यका मारण आदि अतिभयानक अभिचारके काम नहीं करने चाहियें, देखो—लक्ष्मणने कृत्या आदि अभिचार कर्म करने वाले इन्द्रजित् को मारडाला था ॥ छ ॥ इन्द्रजित् मारण मोहन आदि अभिचार कर्मको जानता था, उसको लक्ष्मणने मारडाला, क्योंकि—वह अधिक जीता तो प्राणियोंको अधिक दुःख देता ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थः स्याद्वानप्रस्थो यतिः क्रमात्
आश्रमादाश्रमं याता ययातिप्रमुखा नृपाः ॥

पहिले ब्रह्मचर्य धारण करै, फिर गहस्थको ग्रहण करै, तदनंतर वानप्रस्थ होकर अन्तमें संन्यासी होजाय, देखो—ययाति आदि राजे क्रमसे एक आश्रमका निर्वाह करके दूसरे २ आश्रममें पहुंचे थे ॥ * ॥ वर्णाश्रम धर्मोंको शास्त्रमें लिखी हुई रीतिसे पालने पर संसारमें सुख और कीर्त्ति मिलकर शरीर शान्त होने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥ ६२ ॥

कुर्याद्व्ययं स्वहस्तेन प्रभूतधनसम्पदाम् ।
अगस्त्यभुक्ते वातापौ कोषस्यान्यैः कृतो व्ययः

बहुतसी धन सम्पदा होय तो उसका व्यय अपने हाथसे करै जब अगस्त्य वातापीको खागए तो दूसरोंने उसके धनभण्डार का खर्च किया था ॥ * ॥ अगस्त्यने विवाहमें खर्च करनेके लिये धन पानेकी इच्छासे राजाओंके पास जाकर कहा, कि--मुझे धन चाहिये राजाओंने अपनी आमदनी और खर्च बतादिया, तब उन के पास विशेष धन न समझकर राजाओं सहित इल्वलके पासगए उसने बड़ा आदर सत्कार कर भोजनमें अपने भाई वातापीको

मारकर उसका मांस परोस दिया क्योंकि--वातापी पुकारते ही खानेवालेके पेटको फाडकर निकल आता था, अतः राजे घबड़ाये, अगस्त्यजी राजाओंको धीरज देकर अपने आप उसको खागए, इल्वलने वातापीको पुकारा तो अगस्त्यने कहा, कि--उसको तो मैं पचागया, अब वह नहीं आसकता यह सुनते ही इल्वल चरणोंमें गिरकर कहनेलगा, कि--कहिये क्या चाहिये ? अगस्त्यने कहा कि--इन राजाओंको सोनेकी मुहरें एक २ लाख और मुझे दो लाख दे, उसने ऐसा ही किया क्योंकि-वह बलवान् होने पर भी जानता था, कि--यह ऋषि मुझे भी मारडालेंगे, इसलिये अनेकोंके पेटचीर कर इकट्ठा किया हुआ वातापीका धन देना पड़ा ॥ ९३ ॥

जन्मावधि न तत्कुर्यादन्ते सन्तापकारि यत् ।
सस्मारैकशिरःशेषः सीताक्लेशं दशाननः ९४

जो अन्तमें सन्ताप देनेवाला हो उस कामको जन्म भर कभी न करे, देखो- एक शिर शेष रहगया तब दशाननने सीताहरणके क्लेशको स्मरण किया ॥ * ॥ रामचन्द्रने जब युद्धमें रावणके नौ शिर काटडाले एक मुख्य मस्तक ही बचा तब वह पछताने लगा, कि-सीताको हरनेके कारण मुझे बडा क्लेश सहना पडा, क्या करूं, प्रारब्ध का लिखा मिट नहीं सकता, परन्तु अब पछताने से क्या होता है ? ॥ ९४ ॥

जराशुभ्रेषु केशेषु तपोवनरुचिर्भवेत् ।
अन्ते वनं ययुर्वीराः कुरुपूर्वा महीभुजः ।९५।

जब बुढ़ापेसे केश स्वेत होजायँ तो तप करनेको वनमें चलाजाय, देखो-कुरु आदि वीर राजे अपनी पिछली अवस्थामें वनको चलेगए थे ॥ * ॥ मनुष्यका बालकपन खेल कूदमें जाता है, जवानी आते ही स्त्रीके मोहमें फंसजाता है फिर कुछ अवस्था

संसारके व्यवहारमें वीतती है, इसलिये अन्तके बुढ़ापेमें संसार जालसे छूट कर मुक्तिसुख पानेके लिये एकान्त पवित्र तीर्थस्थान में रहै ॥ ६५ ॥

पुनर्जन्मजराच्छेदकोविदः स्याद्वयःक्षये ।
विदुरेण पुनर्जन्मबीजं ज्ञानानले हुतम् ॥ ६६ ॥

अवस्था बीतजाने पर बुढ़ापेमें जन्म-जरा रूप संसार बन्धनको काटने की चतुराई करै, देखो—विदुरजी ने पुनर्जन्म के बीजको ज्ञानाग्निमें भस्म करदिया था ॥ * ॥ विदुरजीने महाभारत के युद्ध में अनेकों योधाओंका नाशहुआ देखकर विचारा, कि—मेरा मरण ऐसी ही अज्ञानदशामें नहीं होना चाहिये इसलिये उन्होंने सबसे मोह तोड़ मैत्रेय ऋषिके पास जाकर प्राप्त किये हुए ज्ञानकी योगाग्नि से शरीरको त्यागदिया ॥ ६६ ॥

परमात्मानमन्तेऽन्तर्ज्योतिः पश्येत्सनातनम् ।
तत्प्राप्त्या योगिनो जाताः शुकशान्तनवादयः ॥

बुढ़ापा आनेपर मनुष्यको ज्ञानदृष्टिसे सनातन परमात्माके स्वरूपका दर्शन करना चाहिये, शुकदेव आदि मुनि और शान्तनव आदि राजे सनातन ब्रह्मका दर्शन करनेवाले योगी होगए हैं ॥ * ॥ पहिली अवस्थामें मनुष्य संसारी व्यवहार के कारण परलोककी साधना नहीं करसकता, इसलिये पिछली अवस्थामें ईश्वर और जीवकी एकताका ज्ञान पाकर अपनी गति सुधारै ॥ ६७ ॥

प्राप्तावधिरजीवेऽपि जीवेत्सुकृतसन्ततिः ।
जीवन्त्यद्यापि मान्धातृमुखाः कायैर्यशोमयैः ॥

मरणकाल समीप आने पर अथवा अपना मरण होजाने पर भी, जिसका पुण्य अधिक होता है वह नहीं मरता, देखो—मान्धाता आदि राजे यशरूपी शरीरोंसे अब भी जीवित हैं ॥ * ॥

जैसे बने तैसे यश मिलनेका उद्योग करै, जिससे शरीरपात हो जाने पर भी हम अमर रहैं ॥ ९८ ॥

अन्ते सन्तोषदं विष्णुं स्मरेद्धन्तारमापदाम् ।
शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ९९

अन्तसमयमें सकल आपत्तियोंके नाशक सन्तोषदाता विष्णु भगवानका स्मरण करै, देखो–बाणोंकी शय्या पर सोयेहुए भीष्म जीने गरुड़गामी भगवानका स्मरणकिया था ॥ * ॥ महाभारतके युद्धमें दशवें दिन भीष्मजी घायल होकर गिरपडे और युद्धकी समाप्तितक बाणोंकी शय्या पर ही पड़े रहे, शरीरमें बाणोंके छिद नेकी बड़ी पीडा होनेलगी तो भी परमात्माका नाम लेना नहीं छोडा, अन्तकाल तक प्रभुको नहीं भूले, वह जानते थे, कि–प्रभुका नाम अमर सुखका धाम है, यद्यपि भीष्मजी पुण्यात्मा, सत्यवादी और ब्रह्मनिष्ठ थे तो भी अन्तमें श्रीहरि के स्मरणको ही सुखदायक मानते थे ॥ ९९ ॥

श्रव्या श्रीव्यासदासेन समासेन सतां मता ।
क्षेमेन्द्रेण विचार्येयं चारुचर्या प्रकाशिता १००

श्रीव्यासदासके नामसे प्रसिद्ध क्षेमेन्द्र कविने बहुतसे शास्त्रों का विचार करके संक्षेपमें, सत्पुरुषोंके श्रवण और मनन करने योग्य यह चारुचर्या रचकर प्रकटकी है ॥ १०० ॥

सानुवाद चारुचर्या समाप्त

.... 2. ਪਿੰਡ .... 3. ਬਲ

.... 7.

ੜਿਆਂ ਅਤੇ

ਮੀਨ ਦੀ ਮਲਕੀਅਤ

ਤ.............. ....

ੀ ਵਾਲੀ... .... 8.

....

ਨਾਂ ਵਾਲੀ .... 10.

....

ਚੀ/ਯੋਜਨਾ ਲੇਖਾ

....

ਇਗੀ ਰੁ: ....

....

ਗਲਬਾਤ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਵਰਨਣ, ਔਕੜਾਂ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਬਾਰੇ ਗਲਬਾਤ ਕੀਤੀ ਅਤੇ ਸੰਪਤੀ ਦੀ ਹਾਲਤ।